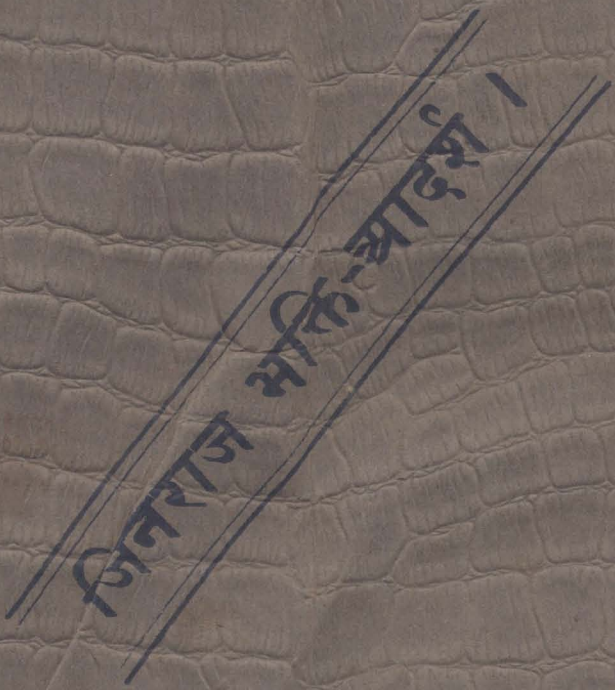

जिनराज भक्ति-आदर्श ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीअभय जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ६

जिनराज भक्ति-आदर्श।

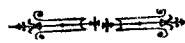

परम-पूज्य, शान्तमूर्ति, मुनिराज श्रीकर्पूरविजयजी के
शिष्य श्रीपुण्यविजय के शिष्यरत्न मुनिवर्य्य
श्रीप्रधानविजयजी के सदुपदेश से

* * *

सुश्रावक श्रीमान् नथमलजी भंवरलालजी
रामपुरिया के आर्थिक सहाय्य से

प्रकाशक—

दानमल शंकरदान नाहटा.

नाहटों की गुवाड़, बीकानेर।

प्रथमावृत्ति १०००	मेरु त्रयोदशी वीर सं० २४५८	मूल्य सदुपयोग

Jain Education International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका ।

प्रिय वाचक वृन्द !

मानव भव की प्राप्ति बहुत दुष्कर, कई भवोंके उपार्जित पुण्यों द्वारा होती है। यही एक ऐसा भव है कि जिसमें मनुष्य अनन्त सुख मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है, यही कारण है कि देव भी मनुष्य भवकी प्राप्तिके लिये हर घड़ी लालायित रहते हैं ; इसलिये यह तो कहने की कोई आवश्यकता ही नहीं कि इस महान् दुष्कर जन्म को पाकर, अपनी इष्ट-सिद्धि की प्राप्तिके लिये उद्योग, मनुष्य का कितना आवश्यकीय कर्त्तव्य है। संसारका प्रत्येक धर्म (नास्तिकोंके अतिरिक्त) अपनी इष्ट-सिद्धिकी प्राप्तिका सर्वोत्कृष्ट साधन प्रभु की सेवा, भक्ति ही मानता है। गुणी के गुणोंको प्राप्त करनेके लिये उसकी सेवा, भक्ति अनिवार्य है, इसलिए पूर्णानन्द साध्यावस्था को प्राप्त करनेके लिये उस परम पुरुष परमात्मा की भक्ति नितान्त आवश्यकीय है। बस, इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही प्रस्तुत पुस्तक में जैन दर्शानानुसार (जिनेश्वर बिम्ब की) भक्ति के मार्ग या विधि को समझाने का प्रयास किया गया है। यद्यपि इस पुस्तक में प्रतिपाद्य विषय से ही भक्ति का उच्चादर्श पूर्ण नहीं हो जाता है, तथापि उच्चादर्श (भक्ति) की दशा को पहुंचने के इच्छुकोंके लिये तो यह पुस्तक बड़ा ही काम की होगी। भक्ति का उच्चादर्श है गुणी के गुणोंमें अभिन्न भाव से एकतार हो जाना, अर्थात् गुणी परमात्मा और अपने को भिन्न न समझ अपनी आत्मा को तद्स्वरूप कर लेना ही भक्ति का सार है। इस उच्चादर्श का लक्ष्य रख जो इस पुस्तकानुसार भक्ति मार्गमें चलेंगे वे अवश्यमेव परमानन्द को प्राप्त करेंगे, यह निःशंसय है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान कालमें क्रियाऐं प्रायः शुष्क (भाव रहित) और अविवेक पूर्ण ही की जाती, देखी जाती हैं, यही कारण है कि अधिकांश लोगोंको इसमें (पूजादि) दिलचस्पी नहीं मालुम देती। और किसी भी काममें बिना रस पड़े (दिलचस्पी मालुम दिये) उस कामको करने को जी नहीं चाहता, बस, जिससे वे इस तत्व (पूजादि) को समझें और इसमें उनको अनुराग हो यही इस पुस्तक को प्रकाशित करने का उद्देश्य है।

बहुत अरसे से मेरा यह विचार था हो, कि मैं इस सम्बन्ध में एक भावपूर्ण निबन्ध लिखूं सुयोग्यवश अबकी बार जब मैं बीकानेर गया तो मुनिवर्य्य श्रीप्रधानविजयजी ने मुझे तीन लेखों का भाषान्तर छपवाने के लिये कहा, उक्त लेखोंमें अपने उद्देश्यकी पूर्ति होते देख मैंने उपरोक्त निबन्ध लिखने के विचार को छोड़, इन्हीं लेखों की पूर्ति रूप एक "मूर्ति-पूजा विचार" नामक लेख लिखने का निश्चय किया, जिसे पाठक पहिले ही पृष्ठसे देखेंगे मेरे लेख के पीछे पाठक तीन लेख और देखेंगे जिसमें से दो लेखोंके लेखक तो वयोवृद्ध जैन तत्व वेत्ता शा० कुंवरजी आणंदजी हैं। जो कि एक जैन दर्शन के अच्छे वेत्ता है और समय २ पर इस तरह के लेख निकाल जनता का अच्छा उपकार करते रहते हैं, आपके उक्त दोनों लेखोंको जनताने बड़ा ही अपनाया, यही कारण है कि उक्त दोनों लेख कईवार प्रकाशित हो चुके हैं। तीसरा लेख पं० चन्दुलालजी का है यह भी बड़ा ही महत्व एवं उक्त विषय को अधिक स्पष्ट करनेवाला होनेके कारण बड़ा ही उपयोगी है यह

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लेख भी "अष्ट प्रकारी पूजादि संग्रह" पुस्तक से हिन्दी भाषान्तर किया गया है। इन लेखोंको पुस्तकाकार प्रकाशन की व्यवस्था के लिये पूज्य मुनिवर्य्य श्रीप्रधानविजयजी ने मुझे सौंपा, एतदर्थ इसकी प्रेस कापी "श्रीश्वे० जैन प्रेस" को छापनेके लिये भेजी गई, लेकिन, उनके पास अधिक कार्य होने की वजह से उन्होंने प्रायः दो मास बाद वापिस लौटा दी, तत्पश्चात् और भी प्रेसवालों से इसकी व्यवस्था के लिये पत्र व्यवहार किया गया, लेकिन आखिर कार उनसे भी न जचने के कारण कई मास बाद कलकत्ते में मेरे भ्रातष्पुत्र भंवरलाल को छपाने को भेजनी पड़ी और इसीसे प्रिय पाठकों को यह पुस्तक अधिक समय के बाद देखने को मिल सकी है।

मेरे लेख के अतिरिक्त उपरोक्त तीनों गुर्जर-लेखों का भाषान्तर बाबू हर्षचन्द्रजी बोथरा एवं बाबू सूर्य्यमलजी बोथरा ने जो कष्ट उठाकर किया हैं, इसलिये मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद दिये बिना किसी भी हालतमें नहीं रह सकता। इसका संशोधन मेरे भ्रातष्पुत्र भंवरलाल के यथायोग्य सम्पादन करनेके कारण उसका परिश्रम भी प्रशंसनीय है। मैं उन महाशयों का भी आभारी हूं कि जिनके लेखोंसे मुझे लेख लिखनेमें सहायता मिली है। मुनिवर्य्य श्रीप्रधानविजयजी के सदुपदेश से पुस्तक को निःशुल्क भेट रखनेके लिए जो आर्थिक साहाय्य श्रीमान् नथमलजी भंवरलालजी रामपुरियाने प्रदान करने की कृपा की है उसके लिये मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हुए आशा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

करता हूं कि आप इसी प्रकार पुस्तक प्रकाशन आदि शुभ कार्योंमें बराबर सहायता देते रहेंगे। कोई शास्त्र विरुद्ध बात न आ जाय इसलिये उक्त चारों लेखों को श्रीश्रीपूज्यजी श्रीजिन चारित्र सूरिजी महाराज एवं मुनिराज वीरपुत्र श्रीआनंदसागरजी महाराज ने देखकर जो अपने अमूल्य समय को खर्च किया है तथा कई एक बातों की उचित सम्मति दे जो मुझे कृतार्थ किया है, उसके लिये मैं उनका चिराभारी हूं। अन्तमें मैं यह आशा करता हूं कि मेरे स्वर्गस्थ ज्येष्ठभ्राता अभयराजजी के स्मर्णार्थ संस्थापित ग्रन्थमाला का छट्ठा पुष्प पाठकों को भक्ति मार्ग में पूर्ण सहायक होगा, प्रार्थना करता हूं कि संशोधन अच्छी तरह करने पर भी दृष्टि दोष और प्रेस की भूलोंके कारण जो अशुद्धियां रह गई हों उनके लिये पाठक कृपा कर क्षमा करेंगे तथा पीछे दिये हुए "शुद्धि पत्र" द्वारा संशोधन कर, पढ़ने की कृपा करेंगे।

निवेदक—

अगरचन्द नाहटा।

नोट—स्मर्ण रहे कि ज्ञान की आशातना ही ज्ञानावर्णीय कर्म के बंध का मुख्य कारण है, इस हेतु, पुस्तक की आशातना न हो, इसका विशेष ध्यान रखें। आप पढ़कर दूसरोंको लाभ उठानेके लिये दें, मन्दिरजी के पूजारियों एवं संरक्षकों को पुस्तकानुसार आदर्शों का अनुकरण करनेके लिए बाध्य करें।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धा-शुद्धि पत्र ।

—:*:—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	५	आर	और
४	३	भारतवष	भारतवर्ष
७	३	वाले हैं	वाला है
८	१५	भावनों	भावनाओं
१०	१५	टोले	टीले
१०	१६	वस्तुएं	वस्तुऐं
१४	६	गु	गुणोंके
१४	१०	क	करना
१४	११	ाक	कि
१५	४	हसलिये	इसलिये
१५	१६	कोई	कई
१८	१०	करनेवाले	कहनेवाले
१६	१२	वृंण के	वृण को
२३	२	इसके	इससे
२८	१५	प्रचार	धर्म प्रचार,
२८	१६	धर्म शरीरमें	शरीरमें पैर
२६	४	मानी	भानो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२	६	विभूात	विभूति
३४	१७	रग	रंग
३६	५	और	लाभ, और
४१	१७	सभ्यक्	सम्यक्
४६	१४	कामकुंम	कामकुंभ
४७	५	प्राणीवग	प्राणीवर्ग
४८	११	बिहकुल	बिलकुल
४९	१०	कदाचित्त	कदाचित्
५५	१२	ल	रतल
५६	१४	हुंये हाने	हुवे होने
६५	७	अज्ञान	अज्ञात
८२	१४	गुह	गृह
९५	४	छई	छूई
१००	१५	हए	हुए
१०१	१३	दे	देते
१०५	६	यथाथ	यथार्थ
११०	१६	स	से

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

"मूर्ति पूजा विचार"

(लेखक—अगरचन्द नाहटा)

जिन-प्रतिमा-सिद्धि

आत्मा निमित्त वासी है। उसके उन्नत आर अवनत होनेमें निमित्त कारण ही की प्रधान्यता है। जिस प्रकार बुरे निमित्तों से आत्मा की अवनति होती है उसी प्रकार अच्छे निमित्तोंसे आत्मा की उन्नति होना स्वाभाविक ही है। इस लिए प्रत्येक प्राणीका यह कर्त्तव्य है कि यदि वह अपनी आत्मोन्नति करना चाहे तो अच्छे निमित्तों में रहना चाहिये। प्रत्येक धर्ममें ईश्वर की उपासना (दर्शन, वंदन और पूजन) को आत्माके उन्नत होनेमें सबसे उत्तम निमित्त माना गया है। जैन धर्ममें भी अपने उपकारी और राग द्वेष से रहित जिनेश्वर देव की भक्ति को आत्मोन्नति में प्रथम साधन बतलाया है। वह भक्ति, उनके नाम स्मरण,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणोत्कीर्तन, वंदन, पूजन, आज्ञा पालन आदिसे की जा सकती है। प्राकृतिक नियमके अनुसार प्राणियों का मूर्ति (प्रतिबिम्ब) की ओर अधिक झुकाव देखा जाता है। मूल वस्तु को पहिचानने और स्मरण करने में उसकी मूर्ति या चित्र की नितान्त आवश्यकता रहती है। स्थापना को माने बिना किसी का भी व्यवहार नहीं चल सकता। इससे अति प्राचीन कालसे भारतवर्षकी जनता मूर्ति पूजा को मानती आई है, किन्तु जब भारतमें मुसलमानोंका साम्राज्य हुवा तो उनके वर्ताव का भारतवर्ष की जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। और मूर्ति को अमान्य करनेवाले मतों का भी भारतमें प्रायः तभी से प्रादुर्भाव होने लगा। यह बात इतिहास प्रमाणोंसे सिद्ध है।

मुसलमानों द्वारा बहुत से प्राचीन मन्दिरों के विध्वंस किये जाने पर भी कुछ अवशेष मन्दिरों, भूमि अन्तर्गत रहे हुवे शिला लेखों,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तियों (खोद कामसे बाहर प्रकाशित हुवे साधनों) और प्राचीन धर्म शास्त्रों द्वारा मूर्ति-पूजा को प्राचीनता भली भांति प्रमाणित होती है। पहिले मैं मूर्ति पूजा की आवश्यकता को दिखला कर, कुछ प्रमाणों द्वारा मूर्ति पूजा की रीति प्राचीन कालसे चली आती है ऐसा सिद्ध करके उसकी आवश्यकता, उपकारिता और लाभजन्यता को दिखाने का प्रयत्न करता हूं। आशा है कि, गुणानुरागी पाठकगण ध्यानपूर्वक पढ़ कर सत्यार्थ तत्व ग्रहण कर अपनी आत्मा को साधकता के पथ पर आकृष्ट करेंगे।

(१) संसारी जीव संसार के मायाजाल में फंसे हुए हैं। उनकी आत्मिक और मानसिक शक्तियां इतनी विकशित नहीं है, कि वे परमात्मा के चित्र या मूर्ति के बिना सुचारुरूप से उनका ध्यान कर सकें। परमात्मा का ध्यान और स्मरण करनेके लिये मूर्ति की बड़ी आवश्यकता रहती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(२) किसी भी पदार्थ का स्वरूप समझाने के लिए उसका चित्र बहुत ही उपयोगी होता है जैसे भारतवर्ष को जानने के लिए भारतवष का नक्शा। बहुत समझाने पर भी जिस विषय का अपने को बोध नहीं होता या बड़ी कठिनता से बोध होता है उसी विषयके चित्र द्वारा उसको समझाने पर उसका ज्ञान बहुत सुगमतासे प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार परमात्म-स्वरूप के समझने के लिए उसकी मूर्ति की नितान्त आवश्यकता रहती है। जिनेश्वरके दर्शन मात्र से उनका स्मरण होकर अपने मनमें उनके गुण, कार्य्य और उनका पवित्र जीवन-चरित्र शीघ्र ही स्मरण हो जाता है। इसी लिए उनके स्मरण करनेमें उनकी मूर्तिकी बड़ी आवश्यकता होती है।

(३) बिना अनुराग (प्रेम) के किसी भी गुण की प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे किसी मनुष्य को संस्कृत का विद्वान बनने की इच्छा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हो तो उसे प्रथम संस्कृत भाषाका प्रेम होना चाहिए तथा साथ ही साथ संस्कृत के विद्वानों के साथ प्रेम व अध्ययन करने की भी बहुत आवश्यकता होती है। उसी तरह जिसे परमात्म-स्वरूप समझने की उत्कंठा हो उसे परमात्मा के गुणों और परमात्मा के प्रति प्रेम होना बहुत ही जरूरी है।

(४) जो वस्तु जगतमें दृष्टिगोचर होती है उसका कुछ न कुछ अपने हृदय पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। जैसे सत्संग व कुसंगका। सुन्दर स्त्री का चित्र देखनेसे उसके लावण्यादि गुणों पर मन आकर्षित होकर विकारावस्था को भी प्राप्त हो जाता है तदनुसार एक शान्ति-मूर्ति तपस्वी, साधु, महात्मा का चित्र देखकर हृदयमें एक अपूर्व शान्ति व भक्ति, त्याग इत्यादिक गुणों की वेगवती भाव धारा वहने लगती है। इसी लिए मूर्तिकी महत्ता व आवश्यकता स्वयं सिद्ध है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अब जिनागमों युक्तियों और इतिहास के के द्वारा मूर्ति-पूजा सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है :—

जैन आगम-ग्रन्थोंमें बहुत जगह "जिन-चैत्य" या "अरिहन्त चैत्य" ऐसा शब्द मिलता है। उसका अर्थ मूर्ति को न माननेवाले मन कल्पित करते हैं। परन्तु "नाममाला (टीका सहित) अमर-कोष और अनेकार्थ संग्रह इत्यादिक कोष ग्रन्थोंमें उसका अर्थ "जिनेश्वरका बिम्ब" "जिन मन्दिर" और "जिन सभाका चौतरे बंध वृक्ष" लिखित है। राय पसेणी, जीवाभिगम, भगवती, ठाणांग, जम्बू द्वीप-पन्नत्ती और ज्ञाता कल्पादिक सूत्रोंमें "जिन मूर्ति" के पूजन करने का उल्लेख स्पष्ट मिलता है। इन सूत्रोंके अर्थ सहित पाठ देखनेकी इच्छा रखनेवालेको (१) सम्यक्त्व-शल्योद्धार (२) जिन प्रतिमा हुंडीरास (३) जिन प्रतिमा सिद्धि (४) मर्ति-मंडन (५) मूर्ति-मंडन-प्रश्नोत्तर (६) सिद्ध

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूर्ति-विवेक-विलास भाग १-२ (७) प्रतिमा-शतक (८) मणि सागरजी महाराज कृत ग्रन्थ जो शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले हैं (९) जैन सूत्रोंमें मूर्ति पूजा इत्यादि ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिए।

युक्ति-प्रमाणोंसे भी मूर्ति पूजा सिद्ध हो सकती है।

(१) किसी भी भाषा-लिपि के अक्षर मूर्त (दृश्यमान) हैं। उन मूर्त अक्षरोंसे लिखित ग्रन्थों द्वारा मानव-समुदाय का महान उपकार होता है। उसी प्रकार क्या ? जिनेश्वर भगवान की मूर्ति से मानव-समुदाय का महान उपकार नहीं हो सकता ?

(२) दशवैकालिक सूत्रमें साधुको स्त्री चित्रों द्वारा चित्रित स्थान पर रहना, पूर्ण निषेध किया है क्योंकि उन चित्रों का प्रभाव उसके हृदय पर पड़ जानेकी संभावना रहती है। उसी प्रकार जिनेश्वर देवकी प्रतिमा देखकर,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य हृदय पर भक्ति-भावों का आविर्भाव अवश्य होता है।

(३) आगम ग्रन्थोंमें उल्लेख है कि समुद्रोंमें "चूड़ी" और "केलू" इन दो आकारों के अतिरिक्त सब ही आकारोंवाले मत्स्य होते हैं। उन मत्स्योंमें "जिन-प्रतिमा" ऐसे आकार वाले बहुतसे मच्छ, मत्स्यादिक होते हैं। देश-विरतिया सर्व विरति-धर्म की विराधना कर, मृत्यु पाकर, मत्स्य योनीमें उत्पन्न हुआ मत्स्य, उस "जिन-प्रतिमा" के आकार वाले मत्स्य को देखकर, विचार करता है कि "मैने ऐसा आकार कहीं अन्यत्र भी देखा है"। विचार करते हुए, मूर्च्छित होकर उसे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। अपना पूर्व भव देखकर उसे बोध प्राप्त होता है और मृत्यु पर्य्यन्त अच्छी भावनों द्वारा आत्म कल्याण करता है। अब भला! जब मत्स्यादि तिर्यंच जीवोंको भी "जिन प्रतिमा आकार" को देखकर आत्म कल्याण करनेका

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अवसर मिलता है तब क्या मनुष्य "जिन-प्रतिमा" को देखकर अपना आत्म कल्याण नहीं कर सकता ? अवश्य कर सकता है।

(४) अपने स्वामी, राजा व सम्राट की मूर्ति का खंडन, अपमान करनेवाले को राज्य दण्ड मिलता है। अपने पूर्वजों की मूर्तियों को देखकर अपने हृदयमें आदर भाव उत्पन्न हो जाता है तब क्या "जिन प्रतिमा" को देख कर आदर, प्रेम व भक्ति नहीं उत्पन्न होती ? अवश्य होती है। इस प्रकार अनेक युक्तियों द्वारा "जिन प्रतिमा" का दर्शन, वंदन व पूजन लाभदायक है यह अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है।

अब ऐतिहासिक दृष्टिसे "जिन प्रतिमा" की प्राचीनता के विषयमें विचार करते हैं।

(१) दो हजार वर्षों से भी प्राचीन महाराजा "खारवेल" का शिलालेख उपलब्ध है। उससे यह जाना जाता है कि मगध नरेश नन्द

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा कलिंग देशसे श्रीऋषभदेव भगवान की प्रतिमा ले गया था। जिसे सम्राट खारवेल वापिस ले आया। इस स्थल पर यह विचार योग्य है कि जिस "ऋषभ प्रतिमा" को नन्द ले गया था वह "मूर्ति" नन्द राजाके पूर्व काल की थी। इससे यह मूर्ति भगवान महावीर के समय की होगी ऐसा अनुमान करना अनुचित न होगा क्योंकि नन्दराजा और श्रेणिक महाराजा व भगवान महावीर के समय का अन्तर कुछ अधिक नहीं है। इससे यह भली भांति सिद्ध होता है कि भगवान महावीर के समयमें या उस समयके करीब, जैन जनता "जिन-प्रतिमा" को मानती थी और उन मूर्तियोंकी प्रतिष्ठा करवाकर मन्दिरोंमें स्थापित करती थी।

(२) कंकालीटोलेको (मथुराके पास) खोदने पर जो प्राचीन वस्तुएं प्राप्त हुई हैं उनमें "जिन प्रतिमाऐं" व जिन मन्दिरों के शिला-लेख भी बहुत संख्यामें मिले हैं। उनमें एक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शिलालेख (जिसकी लिपि बहुत ही प्राचीन है) इसवी सनके १५० वर्ष पूर्वके एक जिन मन्दिर का है। उस लेख से इसवी सनके सैकड़ों वर्ष पूर्व जैन मन्दिरथे, ऐसा प्रमाणित होता है। उस लेखकी शिल्पकला प्रायः अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व की है ऐसा माना जाता है। इससे भी "जिन प्रतिमा" की प्राचीनता स्पष्ट प्रगट होती है।

(३) विक्रमकी सतरहवीं शताब्दिमें खरतर गच्छीय "समयसुन्दर गणि" नामक एक बड़े विद्वान और प्रामाणिक साधु हो गये हैं। उनके समयमें श्रीघंघाणी नामक ग्राममें भूमि भागमेंसे बहुत सो "जिन प्रतिमाऐं" निकली थी। जिन्होंका वर्णन उन्होंने स्वयं रचित स्तवनमें निम्नलिखित किया है :—

बे (दो) सौ तिहोत्तर वीर थी, संवत सबल पडूर।
पद्म प्रभु प्रतिष्ठिया, आर्य-सुहस्ति सूरि॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

माहतणी सुदी अष्टमी, शुभ मुहूर्त विचार ।
ए लिपि प्रतिमा पूठे लिखि, ते वांचि सुविचार ॥
मूल नायक प्रतिमा वलि, सकल सुकोमल देहो जी ।
प्रतिमा श्वेत सोनातणी, मोटो अचरज एहो जी ॥१॥
अर्जुन पार्श्व जुहारियै, अर्जुन पुरि सिणगारोजी ।
तीर्थंकर तेवीसमो, मुक्तितणों दातारो जी ॥२॥
चन्द्रगुप्त राजाथयो, चाणक्यै दीधोराजो जी ।
तिण ए बिम्ब भराबियो, सारया आतम काजो जी ॥३॥
महावीर संवत थकी, वरस सत्तर सो (१७०) बीतोजी ।
तिण समय चवदह पूर्व धरू. श्रुतकेवली सुविदीतोजी॥४॥
भद्रबाहु स्वामी थया, तिण कीधी प्रतिष्ठो जी ।
आज सफल दिन मांहरो, ते प्रतिमा मैं दीठो जी ॥५॥

इस स्तवनसे जो २ प्रतिमाएं निकली थी उनकी प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है। और भी अनेक स्थलोमें भूमि भाग से "जिन प्रतिमाऐं" निकलो है और अभी निकल रही हैं उनसे स्पष्ट जाना जाता है कि पूर्व समयमें जैन संघमें "जिन प्रतिमा" का पूजन होता था और वे मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित की जाती थी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूर्ति पूजा का उद्देश्य

जिनेश्वर की मूर्ति जिनेश्वर समान हो लाभदायक होनेसे जो प्रभु उपासनाका उद्देश्य है वही मूर्ति पूजाका उद्देश्य है अब वह उद्देश्य क्या है ? इसको संक्षेप से नीचे लिखा जाता है। विस्तार से जानने के लिये देखो "उपासना तत्व" १ जैन सिद्धान्तोंका कथन है कि :- प्रत्येक आत्मा सत्ता या निश्चय नयके अनुसार परमात्म स्वरुप है। संसारी आत्माकी यह परिस्थिति कर्मों के बश है और आत्मा पर पुद्गल विषय में आसक्त होकर कर्म बन्धन करती है आत्मा की यह सकर्म सांसारिक अवस्था है। बस परमात्मा और आत्मामें यदि अन्तर है तो मात्र यही, संसारी आत्मा कर्म सहित है, परमात्मा कर्म रहित शुद्ध स्वरुप। इसलिये आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था हो का नाम परमात्मा है। उन परमात्मा की सेवा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भक्ति का उद्देश्य यह नहीं है कि उनसे कोइ वस्तु मांगना हो लेकिन उनके दर्शनका उद्देश्य तो यह है कि उनके गुणोंको स्मरण करना, उनके समान ही अपनी आत्मा है, इसलिये आत्माके शुद्ध परमात्म स्वरूप का ध्यान करना या याद करके मैं परमात्म स्वरूप होते हुए भी ऐसी परिस्थितीमें क्यों हूं ? आत्मोन्नति का मार्ग है इसको विचारना और भक्तिका उद्देश्य है गु अनुराग द्वारा गुणोंके अनुराग को वृद्धि क इन ऊपर की बातोंका सारांश यह है कि अपनी आत्माको परमात्मा रुप बनाने के लिये मूर्ति पूजा पुष्ट अवलंबन या कारण हैं। आत्माके परमात्म रूप बननेमें उपादान कारण तो आत्मा ही है यह कभी भी न भूलना चाहिये, क्योंकि यदि अपन पाप वाशनाओंमें लिप्त रहेगें तो मात्र दर्शन वंदनसे प्रभु तार नहीं सकते हैं।

दूसरा उद्देश्य है उपकारी के उपकार को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मानना। जिनेश्वर देव ने आत्मा आदि द्रव्यों का यथार्थ स्वरूप बतला कर आत्मोन्नति के मार्ग (धर्म) बतलाकर अपने पर महान उपकार किया है इसलिये उपकार को स्मरण कर, मान कर, उनकी भक्ति करना योग्य है।

मूर्ति पूजा से लाभ

१ उद्देश्य के पूर्तिका होना यह इसका लाभ है उन्नत होते २ परमात्म रूप बन जावे यह हो उत्कृष्ट लाभ है।

२ उपरोक्त उत्कृष्ट लाभ होनेके साथ २ और भी अनेकों लाभ देखनेमें आते हैं जिनमें से कई एक ये हैं:=

(क) प्रभु मूर्तिके दर्शन और पूजनादि से अच्छे भावों की जागृति होती है इससे "भाव-विशुद्धि" नामक लाभ होता है।

(ख) श्रद्धा स्थिर रहती है कोइ स्थानोंमें यह देखा जाता है कि उधर मुनि विहार आदि-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

न होने पर भी प्रभु दर्शन पूजन करनके कारण जैन धर्ममें दृढ़ रहते हैं। पूर्व परम्परा से भी भी हमारे पूर्वज इस कार्य को करते आये हैं इससे हम जैनी है यह जानते हैं तो उनका सुधार, उद्धार भी हो सकता है, धर्म से च्युत नहीं होते।

(ग) इतिहास में मूर्ति और मन्दिर के शिलालेखों द्वारा बहुत प्रकाश पड़ता है यह प्रत्यक्ष ही है।

(घ) शिल्प कला को इसमें बहुत पोषण मिला है और मिलता हैं।

(ङ) द्रव्यको शुभ मार्गमें लगाने का यह प्रशस्त मार्ग है इत्यादि अनेक लाभ हैं। इस लिये मूर्ति का दर्शन, बंदन, पूजन नित्य करना चाहिये। महाकल्प सूत्र का भी साधु श्रावकको नित्य जिन मूर्तिके दर्शन करनेका अभिप्राय पाया जाता है। जिस स्थानमें जिन मन्दिर हो वहां यदि साधु और पौषध धारी श्रावक जिन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूर्तिका दर्शन न करे तो छट्ठ (बेला) और पंचोलेका प्रायच्छित लिखा है (मूलपाठके लिये देखो सम्यक्तवशल्योद्धार और जिन प्रतिमा सिद्धि) तथा पूजाका फल सूत्रोंमें अनेक जगह हित, सुख, क्षमा और मोक्ष कहा है इससे प्रत्येक श्रावक को विधि सहित नित्य दर्शन प्रतिदिन यथाशक्ति पूजन करना चाहिये।

मूर्ति पूजा (द्रव्य पूजा)में हिंसा नहीं है

कई लोग ऐसा कहते हैं कि:—द्रव्य पूजामें हिंसा है और हिंसामें तो पाप है। इसलिये द्रव्य पूजा करना ठीक नहीं। इसका उत्तर यह है कि:—जिनेश्वर के बचन एकान्त नहीं है देखिये सूत्रोंमें भी कहा है:—साधु नदीको पार करे, नदीमें डूबती हुई साध्वी को निकाले, इत्यादि तो क्या इन कार्योंमें हिंसा नहीं है? तथापि भगवान ने आज्ञा क्यों दी है। और

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भी देखियेः--साधु विहार करते हैं, मल मूत्रादि निहार करते हैं और भी कई कार्योंमें हिंसा तो होती है तथापि वह सब कार्य करने की आज्ञा दी है तो इससे यह तो अच्छी तरह जाना जाता है कि जिनेन्द्र कथन एकान्त नहीं है तथा प्रश्नव्याकरण सूत्रमें पूजा को दया में गिनी है इससे इसका फल पुण्य और निर्जरा है। अध्यवसायों की निर्मलता के कारण पाप का बन्ध नहीं हो सकता। द्रव्य पूजामें हिंसा करनेवाले भी तो अपने गुरु आदि को वन्दनार्थ हजारों माइल जाते हैं क्या उसमें हिंसा नहीं है ? तथापि परणाम की शुद्धता के कारण वे कार्य लाभदायक और कर्त्तव्यरूप समझे जाते हैं। युक्ति से भी यही सिद्ध होता है :-एक मनुष्य धन कमानेको विदेश गया उसको टिकट खर्च आदि लगता है, और जब वहां से वह धन कमाके लाता है तो आते समय भी खर्च लगता है, तो भी उसे सभी लोग धन कमाके

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लाया है ऐसा ही कहते हैं आवा गमनका खर्च भी होता है किन्तु उस खर्चका कोई जिक्र नहीं रहता; वैसे ही द्रव्य पूजा से भाव विशुद्धिको परम लाभ होनेसे हिंसारूप नहीं होकर निर्जरा और पुण्य रूप ही है। किसी को दुख पहुंचाने पर पाप होता है लेकिन एक मास्टर विद्यार्थीको सदाचारी और गुणी बनाने की भावना से प्रेरित होकर शिक्षा ताड़नादि देता है तथापि उसे कोई बुरा नहीं कहते, उसको अच्छा समझा जाता है। इसी तरह माता पिता अपने बच्चे को सदाचार में रखने के लिये शिक्षादि देते हैं। डाक्टर एक रोगी के वृंण के काटता है उस समय उस रोगी को दुःख अवश्य होता है तथापि वह कार्य डाक्टर उसके अच्छेके लिये करता है, इससे उसका उपकार समझा जाता है इत्यादि अनेकों दृष्टान्त है।

———

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मूर्ति पूजा विषयक प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न—प्रभुके नाम स्मरण से ही बहुत लाभ है तो मूर्ति पूजा क्यों करें ?

उत्तर—नामसे स्थापना विशेष लाभदायक है। जैसेः- एक हाथीके नाम द्वारा जो बोध होता है उससे उसकी तदाकार मूर्तिसे रंग रूप आकारादि का विशेष बोध होता है इसलिये स्थापना (मूर्ति) को मानना पूजना नाम स्मरण से भी अधिक लाभदायक होनेसे यह प्रवृति आवश्यक और विशेष लाभदायक है।

प्रश्न—मूर्तिसे क्या उपदेश मिलता है ? उपदेश का ही लाभ न हो तो क्यों माने ?

उत्तर—यद्यपि मूर्ति कुछ उपदेश नहीं देती, तथापि अपने को स्वयं उससे उपदेश मिलता है। जैसेः-एक मनुष्य किसी स्थान पर गया वहां छतरी भूल आया जब उसने एक दूसरे आदमी के पास

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

छतरी देखी तब उसे स्मरण आइ और वह तुरंत जहां छतरी भूल आया था जाकर अपनी छतरी ले आया। कहिये उसे छतरी लानेका किसने उपदेश दिया था ? किन्तु उसके द्वारा उसे अपने आप उपदेश मिल गया। इसी तरह जिन मूर्ति से उपदेश मिलता है कि :- तुम भी इसी तरह शान्त, निर्विकार, बनो कर्मों को जीत कर परमात्ममय बनो।

प्रश्न—जैसे पत्थर का सिंह किसी को खा नहीं सकता, पत्थर की गाय दूध नहीं दे सकती वैसे ही मूर्ति से भी कुछ लाभ नहीं होता

उत्तर—जैसे पत्थर की गाय दूध नहीं देती वैसे गाय का नाम भी तो दूध नहीं देता, तो फिर तुमको प्रभु नाम स्मरण करना भी छोड़ना पड़ेगा। इसलिये यह कुतर्क

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उलटा तुमारा ही गला पकड़ती है। जैसे गायके आकार को देख उसका स्मरण और ज्ञान होता है वैसे ही परमात्मा का भी समझना चाहिये।

विशेष ज्ञातव्य।

इसी ग्रन्थमें इस लेखके पश्चात ३ लेख और हैं उनके लेखक महाशयों ने जिनेश्वर की भक्ति की विधि, आशातनाएं और उनके निराकरण आदि पर अच्छा प्रकाश डाला है जो कि पाठक आगे पढ़ेगें उन लेखोंमें विशेष ज्ञातव्य और आवश्यकीय विषय जो रह गये है वे नीचे लिखे जाते है।

१ स्नान करनेके पश्चात श्रावकको अपने द्रव्य को केशर से १ मस्तक २ ललाट ३ कंठ ४ और हृदय इन चार स्थानों पर तिलक करना चाहिये। ललाट में तिलक करना यह जैनियों का चिन्ह है यह चिन्ह द्रव्यसे जानना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये। भाव चिन्ह राग द्वेष का त्याग रूप है इसके यथासाध्य मंदिरमें तो (हर समय भी रखने योग्य ही है) अवश्य राग द्वेष के त्याग रूप भाव चिन्ह को रखना चाहिये इसीमें पूजा की सार्थकता है कहा भी है :-

जिन स्वरूप थइ जिन आराधे, ते सही जिनवर होवे।
भृंगी इलीका ने चटकावे, ते भृंगी जगजोवे रे ॥७॥
(आनन्दघनजी कृत नमिनाथ स्तवन)

भावार्थ यह है कि:-जिन, याने राग द्वेष से रहित होके जो जिनेश्वर की आराधना करता है वह जिनेश्वर के सदृश बन जाता है। जैसे:-भ्रमरी ईलीको डंक मारती है उस ईलीको भ्रमरी रूपमें सब जगत देखता है। (इसका विस्तार से अर्थ आनन्दघनजी के चौवीसी पर ज्ञान विमलसूरि और ज्ञानसारजी के टबेसे जानना चाहिये)

२ पूजन करनेवाला सात प्रकार की शुद्धि करे। वे ये है :-

(क) घर अथवा दुकानादि व्यापार एवं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

धन स्त्री पुत्र आदिका तथा राग द्वेषादि विभावोंका स्मरण न करे यह मन शुद्धि है।

(ख) पापकारी सावद्य भाषाका त्याग वचन शुद्धि है। याने मन्दिरमें सत्य प्रिय और बोलने योग्य ही भाषा बोले।

(ग) शरीर से पाप व्यापार न करे हाथ और दृष्टि से भी इशारा न करे, स्नानादिक से शुद्ध होवे यह काय शुद्धि है।

(घ) वस्त्र कटा हुआ तथा जिसको पहिने हुए मल मूत्र मैथुनादि सेवन किया होवे, जला हुआ, छिद्रित, सिलाइ किया और कोई भी रंगवाला वस्त्र न पहनना यह वस्त्र शुद्धि है। याने पूजाके वस्त्र अलग ही रखने चाहिये जो कि नये और श्वेत रंगके हों।

(ङ) भूमिको श्लेस्मादि अशुचि पुद्गल रहित करना भूमि शुद्धि है।

(च) पूजन के उपयोगमें आनेवाले उपकरण लोटा, रकाबी, कलश, धोकर मांजकर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साफ रखनां और उसे गृह काय में न लाना उपकरण शुद्धि है।

(छ) अस्थि (हड्डी) आदि अशुचि पदार्थ को अलग करना अस्थि शुद्धि है।

३ जिस मनुष्यके स्नान करने पर भी गूमड़े फोड़े घाव आदिसे रसी झरती हो या निकलती हो उसे, एवं सूतकादिके समय पूजन नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे आशातना होती है। फोड़ा फुन्सीवाला स्वयं अग्र पूजा और भाव पूजा करें। द्रव्य पूजा की सामग्री देकर दूसरेसे करावे अथवा भावना भावे कि जो जिन पूजन करे सो धन्य है।

(४) "भावना भवनाशिनी" याने भाव कर्मोंको नाश करनेवाले हैं। द्रव्य पूजा भाव वृद्धि के कारणभूत होनेसे ही आवश्यकीय और लाभदायक मानी गयी है, इसलिये द्रव्य पूजा करते समय इस प्रकार की भावना अवश्य रखनी चाहिये जिससे पूजाको सार्थकता होवे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्ट प्रकारी पूजा करते समय रखनेकी भावना यें:-

(क) जल पूजा :- न्हवण कराते समय विचारना चाहिये कि, हे प्रभो ! जिस प्रकार जलसे वाह्य मैल नष्ट होता है उसी तरह मेरे आत्मा के रहे हुए कर्म रूपी मैल नष्ट होवो शुद्ध भाव रूप जलसे ।

(ख) चन्दन पूजा :- चन्दनमें जिस प्रकार शीतलता और सुगन्धता रही हुई है वैसी ही शीतलता मेरी आत्मामें समभाव (उपशमरूप) प्रगट होवो इस भावना को जागृत होनेके लिये मैं यह पूजा करता हूं ।

(ग) पुष्प पूजा :- हे प्रभो जिस प्रकार ये सुमनस (पुष्पनाम) द्रव्य सुगन्ध सहित है वैसे ही सु-मनस याने मन स्वच्छ होकर मेरी आत्मा में भाव सुगन्ध प्रगट होवे ।

(घ) धूप पूजा :- हे प्रभो जिस प्रकार यह धूप अशुभ गन्ध को दूर करता है और सुगन्ध को लाता है वैसे ही मेरे अशुभ आत्म परिणाम

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दूर होकर शुभ भावना प्रगट होवो और जैसे इस धूप का धुवां ऊंचा जाता है वैसे ही मैं उर्द्ध गति रूप, मोक्षको पांऊ।

(ङ) दीपक पूजा :- आप सर्वज्ञ हैं मुझे भी आत्म ज्ञान रूप प्रकाश को प्राप्ति हो।

(च) अक्षत पूजा स्वस्तिक के किनारे रुप चार गति का भव भ्रमण मिटे. ऊपर तीन ढगली रूप ज्ञान दर्शन चारित्र प्राप्त हो, जिससे सिद्ध शिलाके ऊपर मोक्षमें वास हो ऐसा भाव सूचित करना चाहिये।

इस प्रकार के दोहे भी बोले :-

करतां अक्षत पूजना, सफल करूं अवतार।
अ-क्षत फल मांगु प्रभु तार तार मुझतार ॥ १ ॥
संसारिक फल मांगके, रखड्यों बहु संसार।
अष्ट कर्म निवारवा, मांगु मोक्ष फल सार ॥ २ ॥
चिहुंगति भ्रमण संसार मां, जन्म मरण जंजाल।
पंचम गति बिन जाव ने, सुख नहीं त्रिण काल ॥ ३ ॥
दर्शन ज्ञान चारित्र ना आराधन थी सार।
सिद्ध शिला ने ऊपरे, हो वासा श्री कार ॥ ४ ॥

अक्षत फलको (अखंडित) याचना रूप यह अक्षत पूजा करता हूं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(छ) नैवेद्य पूजाः- हे प्रभो आप निर्वेदी और अनाहारी हैं। नैवेद्य आपके सन्मुख रखता हूं इससे अनाहारी पद मुझे भी मिले।

(ज) फल पूजाः- हे प्रभो आपके सामने ये फल चढ़ाता हूं मुझे मोक्ष रूप फलकी प्राप्ति हो यह भावना भाता हूं।

इस प्रकार अष्ट प्रकारके पूजनसे मेरे अष्ट कर्म नष्ट होवें।

॥ नव अंग पूजा समयको भावना ॥

५ चंदन पूजा नव अंगोपर होती है उस समय इस प्रकार की भावना भावेः-

(क) तीर्थंकर देवने पगोंसे अनेक देशों विदेशों विचरकर अनेक भव्यजीवोंको प्रतिबोध दिया, हे आत्मन्! वैसे तूं भी पगके सहायसे प्रचार, तीर्थयात्रा आदि शुभकार्य कर। सर्व धर्म शरीरमें सेवक का काम करते हैं प्रभुने भी सेवा धर्मको स्वीकारा है याने जीवोंको तारने के लिये अनेक देश विचरे हैं इससे यह उपदेश

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है कि प्रथम सेवक (सेवाधर्म अनुयायी) बने बिना स्वामी पद नहीं मिलता। इसलिये सेवा धर्म स्वीकार। यह भावना पैरोंकी (अंगूठे की) पूजा करते समय मानी चाहिये।

(ख) जानु घुटना) यह समाधि भूमिका है, दिक्षाके अनन्तर प्रायः प्रभुजीने खड़े २ काउ सग्ग किया है इससे ध्यानावस्था को चिन्तवन स्मरण करनेके लिये जानुओंकी पूजा करता हूं।

(ग) हे निष्कारण उपगारी! दीक्षाके पूर्व १ वर्ष पर्यंत आपने इन हाथोंसे दान दिया। केवल ज्ञान पानेके अनंतर अनेक जीवोंको दीक्षित किया इससे इन दो हाथों की भावसे पूजा करता हूं।

(घ) हे गुणेश! जिस तरह समुद्रको भुजा के बलसे तरा जाता है वैसे ही आपने इन अनंत शक्तिवाली भुजाओं से संसार समुद्र को पार किया, याने तर गये इसलिये भुजाओंको पूजा करता हूं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(ङ) हे कैवलज्ञानी ! मस्तक जैसे ऊंचा होता है वैसे ऊंचगतिको आप प्राप्त भये है इस लिये मस्तक की पूजा करता हूं ।

(च) हे तीर्थेश ! आपने अनेक परिषह सहनकर कर्म शत्रुओंको हटाकर लोकमें तिलक के समान बने । तिलक करनेका स्थान ललाट है इसलिये ललाट की पूजा करता हूं ।

(छ) हे निर्विकार ! आपके यह कंठ महान उपगारी है । इसी कंठसे आपने अनेकान्त सत्य धर्म का उपदेश देकर अनेक जीवोंका उद्धार किया आज भी आपकी वाणी परम आधार भूत है इसलिये आपके कंठकी पूजा करता हूं ।

(ज) हे सर्वज्ञदेव ! आपने इस हृदय से किसीका भी बुरा चिन्तवन न किया, सब जीवों का उद्धार होकर सन्मार्ग में पड़े ऐसी उच्च भावनासे उपदेश दिया । इस उदार हृदय की भावसे मैं पूजा करता हूं ।

(झ) आपके अनन्त गुणोंका कोई वर्णन

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं कर सकता। उन गुणोंके स्थान (निवास) रुप इस नाभि कमलका मैं पूजा करता हूं। (इस प्रकार अनेक सद् भावना सह आत्मोन्नति के मार्गरुप पूजा करने से महान फलकी प्राप्ति होती है। नव अंग पूजाकी भावना पर विवेचन देखो :-धार्मिक गद्य पद्य संग्रह पृः १२७ से १३२ तक।

प्रभु दर्शनके समय की भावना।

६ प्रभुका दर्शन कर उनके गुणोंका स्मरण अवश्य करना चाहिये। अनुकूलता के अनुसार प्रभुके जीवन चरित्रका स्मरण करना चाहिये कि अहो! प्रभुके १ आश्रवमार्ग का त्याग २ परिषह सहनमें वीरता ३ समभाव ४ उग्रतप ५ उदार भावना ६ दृढ़ता ७ उनके उपदेश ८ उनके किये अनुकरणीय कार्यवा गुण ९ प्रभुके उपकार आदिका स्मरण और चिन्त बन करना चाहिये। प्रभुके गुणोकी ओर अभिरुचि प्रतिदिन बढ़ाते रहना चाहिये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ ही अपनी आत्म दशा का भी चिन्तवन जरूर करना चाहिये कि यह आत्मा परमात्मके सदृश हो सत्ता या वस्तुस्थितिके दृष्टिसे हैं तथापि यह अन्तर जो कि महान पड़ गया है उसका कारण मेरी आत्मा की ही पर भावमें रमणता, आत्म विभूति (पद) का भूलना हो है इसलिये प्रभुके दर्शन करके यह प्रतिज्ञा करता हूं कि आजसे आत्मोन्नति के मार्गमें लगूंगा इस प्रकार नित्य विचार करे कि प्रभु ने जो बचन आत्मोन्नतिके लिये कहें हैं उनका अवलंबन कर मुझे भी परमात्म रुप बनने का अच्छा अवसर मिल गया है इसलिये हे आत्मन ! इस अपूर्व अवसरको हाथसे व्यर्थ न खो निज गुण प्रगटने में लगा इत्यादि आत्माको नानाविध संबोधित सद्वाक्यों द्वारा प्रभुके गुणोंके ध्यानमें लगावें आत्म जागृति बढ़ावे नित्य विचारे कि मैंने जो कल विचार प्रभु सन्मुख किये थे उनका पालन कहां तक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

किया है कहांतक और करना चाहिये इत्यादि विचारोंसे आत्माको उन्नत बनावे। अब प्रभुको संवोधित कर आत्माको अपनी पतित अवस्थाका ध्यान इस प्रकार कराना चाहिये कि हे प्रभो आपने धन, कुटम्बादि का त्याग कर दिक्षा ली, शरीर के मोहका भी त्याग किया यह आपको त्याग भाव मुझे बहुत रुचता हैं कभी मैं भी ऐसा त्याग करूंगा तभी धन्य होऊंगा। निश्चय दशामें आप और मुझमें कोई भिन्नता नहीं है तथापि वर्तमान व्यवहारमें, आप शान्त है मैं क्रोधी हूं, आप त्यागी, मैं भोगी, आप वीतराग, मैं रागी, आप निर्ममत्वी, मैं ममत्व-धारण करनेवाला, आप निज गुण भोगी, मैं पुद्गल विषयासक्त, आप सिद्ध, मैं संसारी, आप निष्कर्म, मैं कर्मोंसे आवेष्ठित, आप अनेक गुण भंडार मैं अनेक दोषोंका सागर, आप परमात्मा, मैं वहिरात्मा आदि अनेक भिन्नताएं हो गई है तथापि आपके परमपावन दर्शन से

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मैं अपने को धन्य, कृत पुण्य, मानता हूं आज मेरी भाग्य दशा जागी अब उन्नति शीघ्र और अवश्य होगी ऐसा मैं मानता हूं। भावना की धारा का वर्णन कोई कर नहीं सकता। आत्मा की उन्नतिके इच्छक प्राणियोंको विस्तार से भावना भानी चाहिये।

७ यथावसर पर्व आदि दिनोंमें प्रभुकी अंगी करनी चाहिये इसका हेतु यह है कि दर्शकके भावों की विशेष वृद्धि होवे इसी लक्ष्य को रख कर अंगी करनी चाहिये।

८ कई जगह मन्दिरों मैं रंग कराया जाता है उसके साथ ही मूर्तिके नीचेके शिलालेख पट्ट पर भी रंग फेर देते हैं या अक्षर लिपिमें रंग भर देते हैं तो रंग करनेवाले कारीगरों की अज्ञता के कारण संवतादि अक्षरों पर उलट पुलट रंग भर दिया जाता है इससे इतिहासमें बहुत खामी पहुंचती है इसलिये रग अक्षरोंमें भरते समय अक्षरोंको अच्छी तरह देख कर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भरना चाहिये, स्पष्ट न पढ़ सकें तो न भरना चाहिये तथा दिवाल आदि जहां पर कोई प्राचीन शिल्पकला का नमूना हो और शिला-लेख हो उस पर रंग नहीं करना चाहिये इस तरफ जरूर ध्यान रखना।

९ पूजा या दर्शन कर प्रभुके सामने (प्रभु से) कोई भी फल मांगना नहीं चाहिये निदान (नियाणा) करना तो सर्वथा त्याज्य ही है लेकिन कई लोग प्रभुसे पुत्र, धन स्त्री, रोगनाश आदिकी याचना करते है यह लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व है। इसलिये कोई भी आशा, फल इच्छा रहित होके ही भक्ति करना लाभदायक है। कभी २ कई लोग प्रभुसे कोई फल मांगते है लेकिन उनके निकाचित कर्मवश वह प्राप्त न होनेपर उनकी श्रद्धा मंद पड़ जाती है। अन्य देवोंकी शरण लेने लगते है इत्यादि अनेक कारण है इसलिये फलकी याचना न करे।

१० मन्दिरके संरक्षकों को मन्दिरजीकी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आशातना का खाश ध्यान रखना चाहिये तथा प्रति वर्ष आय व्यय का हिसाब प्रगट कर देना चाहिये।

११ आशातना का अर्थ यह है कि:- आय- (ज्ञानदर्शन और चारित्रका) और शातना- विनाश या खंडन। याने जिस कार्यसे लाभका नाश हो उसे आशातना कहते हैं। या आ, चारों तरफ से, और शातना याने विनाश, तो चारों तरफसे जिससे विनाश हो उसे आशातना कहते है। भला कौन ऐसा विवेकी पुरुष होगा जो लाभका विनाश करनेकी इच्छा करे? अपितु कोई नहीं। इसलिये लाभ को नाश करनेवाले सर्व कार्योंका त्याग करना चाहिये। वे कार्य मुख्यरूप से निम्नलिखित हैं। आचार्योंने अल्प बुद्धि वालोंके लिये उसके ३ भेद किये हैं :-

जघन्य-मध्यम और उत्कृष्ट इनको क्रमसे लिखते हैं :—

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथा :—तंबोले पाण भोयण, वाणह मेहुन्न सुअण निट्ठवणं ।
मुत्तुच्चारं जूअं, वज्जे जिणनाह जगईए ॥ १ ॥

(देववंदन भाष्य)

भावार्थ :- जघन्य से दश आसातनायें प्रत्येक श्रावक को नहीं करनी चाहिये वे ये हैं :-
१ मन्दिरमें तंबूल याने पान सुपारी आदि मुखवास खाना २ पानी पीना ३ भोजन करना ४ जूता मोजा आदि पहनना ५ रति क्रीड़ा करना ६ निद्रा लेना ७ कफ थूक डालना ८ पिशाब करना ९ बड़ी शंका (शौच) करना १० और जूआ खेलना । यद्यपि ८४ और ४२ के अन्तर्गत भी यही आशातनायें है किन्तु तीन भेद करनेका कारण यह है कि :- जो ८४ आशातना न टाल सके वह ४२ टाले जो वह भी न टाल सके तो १० तो अवश्य ही टाले । यथा शक्य ८४ आशातनाओंमें कोई भी न करना मुख्य कर्तव्य है। मध्यम ४२ आशातनायें इस प्रकार हैं:- १० तो पूर्व कथित, ११ जूआ खेलते देखना १२ पलांठी मारना १३ पग पसारना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१४ परस्पर विवाद १५ परिहास (हंसी) १६ मत्सर करना १७ सिंहासन परिभोग १८ केश शरीर विभूषा १९ छत्र रखना २० तलवार रखना २१ मुकुट २२ चामर रखना २३ धरणा देना या किसी कारणसे संघ या अन्य व्यक्ति निमित्त लांघन करना २४ विलास (हास्यादि) २५ विट (अन्य पुरुष) के साथ प्रसंग करना २६ मुखकोष न रखना २७ मलीन शरीर रखना २८ मलीन वस्त्र रखे २९ अविधि पूजन ३० मन चंचलपना ३१ सचित्त द्रव्य रखना ३२ उत्तरासन न करना ३३ अंजलि न करना ३४ पूजाके उपकरण अशुद्ध रखना ३५ अशुद्ध फूल चढ़ाना ३६ अनादर करना ३७ जिनेश्वरके प्रत्यनीक-द्वेषीको निरुत्तर न करना निषेध न करे ३८ चैत्य द्रव्य भक्षण (इसके करनेसे सम्यक्त्व तक नहीं मिलता) ३९ चैत्य द्रव्य उपेक्षा (सार संभाल न करना) ४० शक्ति होने पर भी बंदन, दर्शन, और पूजनमें मंदता करना आलस्य करना।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

४१ देव द्रव्य भक्षो से मित्रता करना व्यापारादि करना, ४२ देवद्रव्य भक्षकको बड़ा सेठ करना, उसकी आज्ञा मानना। अब उत्कृष्ट ८४ आशातना का विवरण दिया जाता है।

१ श्लेष्म, थूक डालना, २ जुआ रमना ३ कलह ४ कला भ्यास ५ दंतन कुरला करना ६ पान खाना ७ पानका पीक डाले ८ गाली आदि कुवचन बोले ९ पिशाव, शौच करे, १० शरीरादि धोवे ११ केश संवारे १२ नख कटावे या डाले १३ खून डाले १४ सूखड़ी आदि खावे १५ गूमड़े आदिकी त्वचा उतारे १६ औषधि खा पीत गेरे १७ वमन (उलटी) करे १८ दांत गेरे १९ हाथ पैरका मैल डाले २० घोड़ादि बांधे २१ दांतका मैल गेरे २२ आंखका मैल गेरे २३ नखका मैल २४ गालका मैल २५ नाक का मैल २६ शरीरका मैल २७ सिरका मैल २८ कानका मैल गेरे २९ भूतादिक की मंत्र विद्या, साधे राज सम्बन्धी विचारे ३० विवाह

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धी पञ्चायत करे ३१ व्यापार सम्बन्धी हिसाब करे ३२ राजाका कार्य करे बोट देवे ३३ घरका जेवरादि रखे ३४ दुष्टासन से बैठे ३५ गोबरके छाणे लीपे ३६ बड़ी करे, सुकावे ३७ वस्त्र सुकावे ३८ दाल पोसे दले ३९ पापड़ बटे सुकावे ४० राजादि के भयसे छिपै ४१ पुत्रादि मरणसे रोवै ४२ राज कथा देश कथा, स्त्री कथा और भोजन कथा करे ४३ जेवर गढ़े शस्त्र बनावे ४४ गाय भैंस बैलादि रखे ४५ ठंड दूर करने को अग्नि तापे ४६ धन्यादि रांधे ४७ रुपया मोहर परखे ४८ निस्सही विधिसे न कहे ४९ छत्र ५० पगरखी मोजा ५१ शस्त्र ५२ चामर यह चार बस्तु रखे (भीतर लावे) ५३ मन एकाग्र न करे ५४ तैलादि मर्दन करे ५५ शरीरके उपभोग्य फूलों को न त्यागे ५६ हार मुद्रा, कुंडलादि आभूषण उतार के न आवे ५६ प्रभुको देख हाथ न जोड़े ५८ एक वस्त्रसे उतरासन न करे ५९ मुकट रखे ६० शिर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पर वस्त्र लपेटा रखे ६१ फूलका सेहरा रखे ६२ नारियल आदिका छिलका डाले ६३ गैंद (दडी) खेले ६४ जुहार, मुजरा आदि करे ६५ भांड कुचेष्ठा करे ६६ तूं तूं शब्द कहे ६७ लहना ६८ संग्राम करे ६९ मस्तक केश सुकावे ७० पालखी लगाके बैठे ७१ पावडी पहने ७२ शरीर धोकर कीचड़ करे ७३ शरीर दबावे ७४ पग पसारे ७५ शरीरकी धूल झाड़े ७६ मैथुन सेवन करे ७७ जूं लीख गेरे ७८ भोजन करे ७९ गुह्य चिन्ह ढक कर न बैठे ८० वैद्यक काम करे ८१ क्रय विक्रय व्यापार करे ८२ सय्या करके सोवे ८३ पीनेके वास्ते जल रखे ८४ स्नान के लिये जगह बनावे ये उत्कृष्ट ८४ आशातनायें हैं।

जहां तक हो सके स्वयं किसी प्रकारकी आशातना करनी नहीं दूसरा करता हो तो निवारण करना यह प्रत्येक जैनी का कर्त्तव्य है ऐसा न करनेसे दोषका भागी होना पड़ता है १०० वर्ष

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

से प्राचीन मन्दिर तीर्थ कहा जाता है उसकी आशातना विशेष रुपसे वर्जे ।

कहा भी है :—

तीरथनी आशातना नवि करिये, नवि करिये रे नवि करिये ।
धूप ध्यान घटा अनूसरिये, तरिये संसार ॥ ती० ॥ १ ॥
आशातना करतां थकाधन हाणी, भुखा न मले भन्न पाणि ।
काया बली रोगे भराणी, आभव माँ जेम ॥ ती० ॥ २ ॥
परभव परमाधामी ने वश पड़शे, वैतरणी नदी में रुलशे ।
अग्नि ने कुड़े बलशे, नहीं सरणुं कोय ॥ तीन ॥ ३ ॥

(नवांणूं प्रकारी पूजा वीर विजयजी)

१२ इस प्रकार तथा और भी सूत्रोक्त विधि सहित कार्य करनेसे पूर्णफलकी प्राप्ति होती है अविधिसे क्रिया करना ठीक नहीं। कहा भी है:-"अविधि थी क्रिया करी नवि छूटे भवनो लारो रे" इत्यादि। इसलिये प्रत्येक धर्मकार्य जो किया जाय उसका हेतु, विधि, परमार्थ सद्गुरुसे व योग्य जानकार, मनुष्योंको पूछ कर विधि सहित करनेका प्रयत्न करना चाहिये। कारण जिस प्रकार औषधि लेने पर भी पथ्य

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पालन करनेसे ही फायदा होता है वैसेही कर्म रोगको दूर करनेको धर्म रूप औषधिके साथ विधि रूपी पथ्य अवश्य सेवन करना चाहिये तभी पूर्ण लाभ मिलता है अन्यथा हानि होनेकी संभावना है। यहां यह प्रश्न होना सम्भव है कि:-यदि सम्पूर्ण विधि पालन न हो सके तो धर्म क्रिया (पूजनादि) करनी या नहीं ? इस का उत्तर यह है कि:- यथा साध्य प्रयत्न करने पर भी विधि न पले तो भी धर्म क्रिया तो अवश्य करते रहना चाहिये क्योंकि करते रहनेसे तो कभी न कभी विधि मार्ग में प्रवृति हो जायगी इस लिये क्रिया करना न छोड़े तथापि विधि मार्ग की ओर लक्ष्य और प्रयत्न तो अवश्य होना ही चाहिये। विधि मार्ग आराधक को धन्य है बहुमान करनेवाले भी धन्य हैं

१३ चैत्यवन्दनादिमें जो २ पाठ आवें वे तथा स्तवन, पूजाका अर्थ जरूर सीखना चाहिये।

१४ पूजन विधि आदि इस ग्रन्थमें संक्षेप

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

से कही है विस्तार से देववन्दन भाष्य २ जिनदेव दर्शन, स्याद्वादानुभव रत्नाकर आदि ग्रन्थमें है इसलिये विस्तारसे उन ग्रन्थोंसे और सद्गुरु से जानना ।

१५ मन्दिरमें अच्छी तरह प्रकाश पड़ने लगे कि जिससे जीव यत्ना भली प्रकारसे हो सकती हो उस समय खुलना चाहिये । मारवाड़ादिमें मन्दिर बहुत जल्दी खुलते हैं यह ठीक नहीं जीव दया यथावत् नहीं पलती इसलिये इस रीतिको सुधारने की जरूरत है। यह कार्य स्त्रियोंके लज्जाके कारण होता है लेकिन ऐसी लज्जा करना उचित नहीं कि जिससे धर्ममें नुकसान पहुंचता हो । सूर्योदयसे पहले पूजन होता है वह भी अयोग्य है । तथा संध्या समय मङ्गल दीपक आरति हो जानेके बाद मंदिर बंद हो जाने चाहिये । रात्रिमें (विना विशेश पर्व और तीर्थादि) मंदिर खुला रखना संघपट्टकादि ग्रन्थों में निषेधित है । पूजाका कार्य सेवकों

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पर न छोड़ें जैनी भाइयों को स्वयं अपने हाथसे करना चाहिये अन्यथा बड़ी आशातनायें होती है

सम्यक्त्व विचार ।

सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धा रखने को सम्यक्त्व कहते हैं :—

१ सुदेवः- श्री अरिहन्त सर्वज्ञ १२ गुण सहित और रागद्वेषादि १८ दूषण रहित वही सुदेव है।

२ सुगुरुः-पंच महाव्रतके धारक कनक-कामिनोके सर्वथा त्यागी सर्वज्ञ प्रणीत धर्मके उपदेशक हों वे सुगुरु हैं।

३ सुधर्मः-अनेकान्त स्याद्वादमय केवली भगवान भाषित, दयामय सर्व जोवको हित कारक सुधर्म है ।

उपरोक्त तत्वत्रय को श्रद्धाको सम्यक दर्शन कहते है सो धारणो योग्य है। इससे विपरीत कुदेव, कुगुरु और कुधर्म के ऊपर श्रद्धा को मिथ्यात्व कहते हैं वह त्याज्य है। सभ्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र ही मोक्षका मार्ग है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भावना के दोहे :—

त्रिजग नायकतुं धणी महा महोटा महाराज ।
मोटे पुन्ये पामिया, तुम दरशणहुं आज ॥ १ ॥
आज मनोरथ सबि फल्या, प्रगटयां पुण्य कल्लोल
पाप करम दूरे टल्या, नाठा सर्व दंदोल ॥ २ ॥
सुखदाई प्रभु तुं बड़ो, तुज सम अवर न कोय ।
करम मल दूरे कर्या पाम्या शिवपद सोय ॥ ३ ॥
ज्ञानावरणी क्षयकरी, दर्शना बरणीय कर्म ।
वेदनोय कर्म दूरे, टाल्युं मोहनीय कर्म ॥ ४ ॥
नाम कर्म ने आयु कर्म, गोत्र अने अन्तराय ।
अष्ट कर्म एणी परे, दूर कर्या महाराय ॥ ५ ॥
दोष अठारह क्षय गया, प्रगटया पुण्य अनन्त ।
अन्तरंग सुख भोगवे, निश्चल श्रीअरिहंत ॥ ६ ॥
कल्पवृक्षने कामकुंभ, पूरे मन ना कोड़ ।
प्रभु सेवा थी ते मले, जो मंछा (श्रद्धा) होय अड़ोल ॥७॥
त्रण भुवन में तुं बड़ो, तुज सम अवर न कोय ।
इन्द्र चन्द्रने चक्रवर्ती; तुज पद सेवे सोय ॥ ८ ॥
प्रभु सेवा भावे करे; प्रेमधरी मनरंग
दुःख दोहग दूरे टले, पाये सुख मन चंग ॥ ॥
पूजा करता प्राणिया, पोते पूजनीय होय ।
आभव परभव सुख घणा; तस तोले नवि कोय ॥१०॥
जीवड़ा जिनवर पूजिये, जिन पूज्या सुखथाय ।
दुख दोहग दूरे टले, मन वञ्छित फल पाये ॥ ११ ॥
द्रव्यभाव थी अति घणो, हैडे हरष न माय ।
इन विध जिनवर पूजनाँ, पापकरम दूरे जाय ॥१२॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

'जिनराज-भक्तिके प्रति होनेवाली आशातनायें"

(लेखक- श्रीकुंवरजी आणंदजी-भावनगर)

इस विषय पर विचार करना बहुत जरूरी है। उत्तम और भव भीरु प्राणी वग इन आशातनाओं से बहुत डरते रहते हैं किन्तु कुछ तो इस विषय पर दीर्घ विचार नहीं करनेसे, कुछ उपेक्षा भावके रहनेसे, कुछ बोधकी मन्दता से और कुछ इस विचारको जागृत करनेवालों की कमीसे, जिनराज भक्ति करने की इच्छा रहते हुये भी, जिन पूजादि धर्म क्रिया करते समय, प्राणीवर्ग जिनेश्वर देवकी आज्ञा भंगरूप यह तथा ऐसी ही अन्य अन्य आशातनायें करते रहते हैं जिनके विषयमें यथासाध्य नीचे वर्णन किया जाता है। आशा है बुद्धिमान लोग इस पर विचार करके जो बातें ठीक मालूम हों उसे सत्वर स्वीकार करके वर्त्तन में लावेंगे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१ सर्व प्रथम तो श्रावकके वास्ते सिर्फ जिनपूजा ही के निमित्त हर रोज स्नान करनेका कहा गया है, अन्यथा प्रति दिन स्नान करना निषेध है। जिनपूजाके हेतु जो स्नान कराना है, वहभी परिमित (मापा हुआ) जलसे और इस रीतिसे कि जिससे लीलन फूलनकी व त्रस जीवोंको विराधना न हो, यतना (जयणा) पूर्वक नहाना चाहिये। किन्तु इसके विपरीत बहुत जगह या बंबई जैसे बड़े शहरोंमें तथा और भी कई स्थानों में लोग इस तरह नहाते हैं कि जहां जयणा बिहकुल नहीं पाली जाती, जलका कोई परिमाण नहीं रखा जाता और अनन्त काय (लीलन फूलन) के अनन्त जीवों की विराधना तथा त्रस (चलते फिरते) जीवों की भी विराधना होती है। ऐसा होने से प्रारंभमें ही श्रीजिनेश्वर भगवान की आज्ञा का भंग होता है और यह भी एक प्रकार की आशातना ही है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(२) स्नान करनेके पश्चात पहिनने की कम्बली तथा उसके बाद पूजाके समय पहिनने के वस्त्र इतने मैले, गन्दे, दुर्गन्धि पूर्ण और फटे हुए होते हैं कि जिसके लिये अच्छी स्थिति वाले श्रावकों को लज्जित होना चाहिये क्योंकि वे भी कदाचित्त १ सालमें १ बार पूजाका वस्त्र बदलते होंगे। वे कभी यह विचार नहीं करते कि अगर हम लोग ऐसे ही वस्त्र रखेंगे तो बिचारे साधारण स्थिति वाले कैसा बस्त्र रखेंगे? अपने घरके पूजाके बस्त्र कदाचित्त ही कोई रखता हो और यदि किसी के अपने घरके ही होंगे तो उसे स्वच्छ रखने की ओर ध्यान नहीं नहीं दिया जाता। इससे निजके शरीर को नुकसान पहुंचता ही है और परमात्माके प्रति अनादर सूचित होता है और इसीसे प्रभुके प्रति भक्तिमें कमी जाहिर होती है। अतः यह भी एक अशातना ही है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(३) श्रीजिनेश्वर भगवान की द्रव्य-पूजाका प्रारम्भ जल पूजासे होता है और वह जल पूजा जिस समय दो घड़ीके लग भग दिन चढ़ जाय, सूर्यका प्रकाश आने लग जाय, रात्रिमें आये हुये जीव जन्तु स्थानान्तर हो जांय और यदि कोई जीव वहीं रह भी गया हो तो वह अच्छी तरह दृष्टि गोचर होने लग जाय एवं मोर पींछी (मयूरपंख) द्वारा हटाया जा सकता हो ऐसे अवसर पर तो जलपूजा करना योग्य है अन्यथा कितने ही स्थानोंमें अनेक समय यहां तक देखनेमें आया है कि उपरोक्त जयणाको आचरित किए बिनाही जलपूजा (प्रक्षालन) कर डालते हैं जिससे जीव दयाका आवश्यक कर्तव्य होता नहीं है और तिर्थङ्कर की आज्ञाका भङ्ग होता है। यहभी एक प्रकार का आशातना हो है। यहां यह खास ध्यानमें रखना जरूरी है कि अष्टप्रकारी पूजा करने का मुख्य समय हो दूजा प्रहर बतलाया गया है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(४) जिनबिंब का प्रक्षालन (पखाल) करने में गत दिवसकी केशर पुष्पादिक को दूर करना सबसे प्रथम प्रयोजन है। क्योंकि पुष्प सुवासित होनेसे उनमें अनेक त्रस जीवों की उपस्थिति (होना) सम्भव है अतः उन्हें पहिले ही से न हटा कर प्रक्षालन के जलके साथ ही छोड़ दिये जाते हैं जिससे उनमें स्थित त्रस जीवों का विनाश होता है। पहिले या पीछे किसी भी समय एक भी पुष्प न्हावण के जल में पड़ना हो नहीं चाहिये। यह बात खास तौर से ध्यानमें रखनी चाहिये।

(५) जिनबिम्ब के ऊपर लगी हुई गत दिवस की केशर को बासी केशर कहते हैं. उसे हटानेके लिये भीगे हुये अङ्गलुहणोंसे काम लेना चाहिये परन्तु ऐसा होनेके बजाय बालकुंची से इस तरह प्रक्षालन कराया जाता है मानो सुवर्णकार गहने धोरहा हो सुवर्णकारकी बालकुंची तो बालों की होनेसे सुकोमल होती है

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पर यह बालकुंची तो सुगन्धी खसके बालोंकी होनेसे अत्यन्त कर्कश होती है, जिसके लिये अभी तक कोई सुधार नहीं हुआ है। ऐसी कर्कश बालकुंची से प्रभुजी के समस्त शरीरको घसना, रगड़ना एक प्रकारकी महान आशातना है; अतः बन सके वहां तक बालकुंची का प्रयोग सर्वथा करना ही नहीं चाहिये। कदाचित जिनबिम्बके किसी भागमें खड्डा पड़ गया हो और उसमें की केशर न निकलती हो तो ऐसी हालतमें केवल ढीले हाथोंसे बालकुंचीका सहज मात्र ही उपयोग करना चाहिये। बालकुंचीका सतत् एवं निरंतर प्रयोग करनेसे जिनबिम्ब पर कितनी घसोटें लग जाती है यह प्रभु के शरीरके कितने ही स्थलोंपर, पलांठो (पालखी) के ऊपर के लेख पर, धातु बिम्ब की मुख व नासिकादि पर, या सिद्धचक्रजीके अंगोपांगादि पर दृष्टि डालनेसे प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती हैं। बालकुंची का सर्वथा उपयोग ही न किया जाय,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

और कदाचित किसी खुणे खोचरे स्थानमें वासी केशर लगी हुई रह भी जाय, तो उससे इतनी बड़ी आशातना नहीं होती जितनी बाल-कुंचो से जिनबिम्ब को रगड़ने में होती है। फिर इससे भी अधिक ध्यान इस बात पर देना चाहिये कि जिनबिम्ब पर जल की बूंद नहीं रह जाय जिससे लीलन फूलन पैदा होनेकी एवं मैल जम जाने की सम्भावना रहती है। अंगलुहणा करते समय इतनी जल्दी की जाती है कि खुणे खोचरे की न तो सम्भाल ही ली जाती है और न उस पर कोई दृष्टि ही डाली जाती है। इसी लिये आवश्यक्ता इस बात की है कि इन सब बातों पर विशेष उपयोग रखा जावे और बालकुंची का उपयोग अत्यावश्यक होने पर ही किया जावे। जो लोग इन बातों पर ध्यान नहीं देते वे पूजारियों (गोठीलोगों) से होनेवाली समस्त आशातनाओंके हिस्सेदार होते है, यह उनको कभी नहीं भूलना चाहिये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इसके सम्बन्धमें यदि और भी अधिक खात्री चाहते हैं तो किसी समय ऐसी बालकुंची का अपने शरीर पर प्रयोग कर देखना चाहिये कि जिससे इस हकीकत की खात्री स्वयंमेव हो जायगी एवं बालकुंची उपकारके बदले अपकार अधिक करती है यह बात अच्छी तरह समझमें आ जायगी।

(६) प्रक्षालन (पखाल) करनेके पश्चात अंग लुहणा करनेमें आता है। कितने ही स्थानोंमें तो अंगलूहणे उत्तम, स्वच्छ, नरम और उज्वल देखनेमें आते हैं। किन्तु कितने ही ग्रामों और शहरोंमें फटे हुए, मैले, सड़े हुए और बिलकुल छोटे अंगलुहणे काममें लाये जाते है जो प्रभु जी की भक्ति के बदले आशातना का कारण रूप हो जाते हैं। यदि हरेक अच्छी स्थितिवाला पुरुष साल भरमें २ (दो) अंगलुहणे मन्दिरजी भेंट करता रहे तो ऐसी स्थिति कभी पैदा न होवे। मन्दिरजी के संरक्षक (बहोवट) यदि

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अच्छा कपड़ा लाने की उदारता दिखावें और साथही अमुक महीनेमें बदलवाये जाते हैं या नहीं एवं प्रति दिन धोकर स्वच्छ किये जाते हैं या नहीं? इन बातोंकी सम्भाल रखे तो यह अविवेक पूर्ण, अनादर रूप आशातना नहीं होने पावे। यथासम्भव बढ़िया मलमलके अंगलुहणे होने चाहिये। जिसमें प्रथम अंगलुहण करनेके लिए देशी मलमल या कोईसा अच्छा सुन्दर वस्त्र का व्यवहार किया जाय तो कोई अड़चन नहीं होगी।

(७) अंगलुहण करनेके पश्चात चन्दन-पूजा की जाती है, जिसमें ४०) रुपये ल की केशर उपयोग की जाती है और चन्दन जिसकी यह खास पूजा गिनी जाती है वह बिलकुल घटिया, बिना सुगन्धि का और सामान्य काष्ठ जैसा उपयोग किया जाता है। इस विषय पर खास तौर से ध्यान देना चाहिये कि चन्दन तो खूब बढ़िया और ऊंची कीमत वाला होना चाहिये और इससे जो खर्च बढ़नेकी सम्भावना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हो तो उतना ही खर्च केशर खातेमें घटा देना चाहिये। गहरी लाल केशर चढ़ाना बहुत हानि कारक है कारण इससे अनेक बिम्बों पर दाग पड़ जाता है और छिद्र एवं खड्डे तक पड़ जाते है। इत्र का उपयोग करनेवालोंको भी इस बातका ध्यान रखना जरूरी है कि जो इत्र (अतर) बिम्बके अनुकूल न हो तो इसके लगाने को कोई आवश्यकता नहीं है।

(८) अब पुष्प-पूजा की बारी आती है। पुष्प दो प्रकार से चढ़ाये जाते हैं। १ छटे हुये २ गुंथे हुए जैसे हार। पुष्प सुमधुर सुगन्धयुक्त और सुशोभित होने चाहिये और जिसकी पांखडी गिरी हुई न हो ऐसे और योग्य रीतिसे लाये हुंये हाने चाहिए। ऐसी स्त्रियें जो ऋतु-दिवसों का पालन न करती हो, उनके लाये हुए पुष्प सर्वथा चढ़ाने लायक नहीं होते हैं। अलावा इसके कोई पुरुष यदि विवेक पूर्वक लाया होवे तो उन पुष्पों को ले लेना चाहिये। हरेक पुष्प

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

को दृष्टि से अच्छी तरह देख लेना चाहिये और फिर खंखोर कर बादमें अल्प जलसे फंवारे की तरह रुचि अनुसार छांटना चाहिए। पुष्पोंको हर समय धोनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इससे उनकी विराधना होती है और इतना ही नहीं पर इसके अन्दर रहे हुए त्रस जीवोंकी, जो अपनी दृष्टिमें नहीं पड़े हों और खंखेरने से भी जो खिरे नहीं, ऐसे जीवोंकी (सूक्ष्मत्रस) विराधना होती है। और पुष्प तो जाति ही से पवित्र है इनको पानीसे पवित्र करनेकी जरूरत नहीं रहती। ऐसे छूटे पुष्प खूब विवेक सहित शोभनीक मालूम हो उस ढंगसे जिनबिम्ब पर चढ़ाना चाहिए इसमें जो कुछ भी अनुपयोग किया जायगा उसीका नाम आशातना है। पुष्पोंके हारके सम्बन्धमें तो प्रधानतया विचार करने की जरूरत है। पुष्पों में सुई घुसा कर जो हार बनाये जाते हैं, वे तो सर्वथा ही चढ़ाने के लायक नहीं हैं। इसमें तो प्रत्यक्ष आशातना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

है, जिनाज्ञा का भङ्ग है, जीवोंकी विराधना है और दयालु कहलाने वाले श्रावकों के सर्वथा त्यागने योग्य प्रवृत्ति है। बहुतसेभोले, भक्तिवान भाइयोंके हृदयमें अभी तक यह बात स्थान नहीं पाती। इसीलिये सिद्धाचलादि तीर्थ स्थानों में उन लोगों ने इन बातोंको हद से ज्यादा बढ़ा दिया है, किन्तु ऐसा करना बिल्कुल अयोग्य है। श्राद्ध-विधि वगैरह अनेक ग्रन्थोंमें पुष्प चार प्रकार से चढ़ाने का कहा गया है, उसमें साफ तौरसे पुष्पों को गूंथ कर के हार बनाने का विधान है। इसके विषय में और भी जितना चाहे, जान सकते हैं यहां अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यह भक्तिके नामसे होनेवाली आशातना को बिलकुल ही रोक देना चाहिये। आंशा है, सुज्ञ जैन-बन्धु इस पर विशेष ध्यान देकर ऐसी आशातनाओं से हर समय दूर रहेंगे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(६) पुष्प-पूजा के अनन्तर धूप एवं दीप-पूजा की जाती है इसका नाम अग्र-पूजा है। असलमें तो अग्र पूजा गर्भ गृह (गंभारा) के बाहर रह कर ही करनी चाहिये परन्तु आज कल तो गर्भ गृहके अन्दर ही सर्वत्र करते नजर आते हैं, इतना ही नहीं पर धूपको प्रभुजी के मुख तक ले जाते हैं। अज्ञान पूजा करने वाले अगरवत्ती के टुकड़े को धूपदान में बिना रखे ही उसको प्रभुजी के इतना निकट ले जाते हैं कि उसकी राख या वह टुकड़ा प्रभुजीके शरीर पर गिर जाता है। इस अज्ञानता को दूर करने की पूरी जरूरत है क्योंकि ऐसा करने से भक्ति के बजाय महान आशातना होती है। मन्दिर जीको दीवारों पर कोयलेसे अपने नाम अंकित करनेवाले अज्ञानी पुरुष जितना नुकसान करते हैं उससे भी ज्यादा नुकसान वे करते हैं जो गर्भगृहके तमाम भागोंको, धूपदीप करके काला कर देते है। इस पर हर व्यक्ति को पूरा ध्यान

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

देना चाहिये और धूप दान (धूपीया) हो वहां तो उसही से धूप करना चाहिये।

(१०) दीप पूजा करनेवाले मन्दिरके द्रव्यसे खरीदे हूए घृत को तैयार देख कर तथा उस घी से भरा हूआ दीपक तैयार पाकर आरती करने लग जाते हैं। परन्तु यह ख्याल रहे कि अगरबत्ती बगैरह धूप तो साधारण खाते का होता है मगर यह घृत (घी) उस खातेका नहीं होता है। विशुद्धि के प्रेमी श्रावक अपने घरके घी से दीपक करके आरती करते हैं। यहां तक कि वे लोग मन्दिरजीका एक सूत भी उपयोग नहीं करते हैं।

(११) इसके अनन्तर प्रभुजी के सामने गर्भ गृह के बाहिर बैठ कर अक्षत, फल और नैवेद्य ये ३ तीन पूजाएं एक साथ की जाती है। इसमें जिस प्रकारके विवेककी आवश्यक्ता होती है, वह ध्यानमें नहीं रहता। पूजा करने वाले मुंह से बोलते हैं कि "अक्षत शुद्ध अखंड

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सुं, जे पूजे जिनराय" पर स्वयं जिन चावलोंसे स्वस्तिक (साथिया) करते हैं, वे चावल कैसे हैं, इस पर कोई ध्यान नहीं देता है। कितने ही समय तो इन चावलोंमें धनेरिया (इल्ली) बावां (लट) बगैरह जन्तु भी देखने में आते हैं, जिनकी विराधना हो जाती है। फल भी साधारण, एवं नैवेद्य की जगह मिश्रीके टुकड़े या पतासे जैसी मामूली चीज चढ़ाई जाती है। खैर, हर रोज के लिए तो कोई बात नहीं मगर पर्व के अवसर पर या अपने घरमें विवाह लग्नादि के समय जब काफी मिठाई रहती है या किसी मित्र या अतिथि के लिए मिष्टान्न की तैयारी होती हैं उस समय जिनेश्वर की भक्ति का कभी स्मरण ही नहीं होता और न वे वस्तुएं कभी चढ़ाई जाती है। फल भी उत्तम जाति के नहीं होते यह जिन-पूजा के प्रति अल्पादर स्पष्ट जाहिर होता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(१२) द्रव्य पूजा करनेके पश्चात भाव पूजा का अवसर आता है। द्रव्य पूजामें बहूत सा समय लगानेवाले भी भाव पूजा में बड़े मंद आदरवाले दीखते हैं। द्रव्य पूजासे भाव पूजा में अनन्त गुण अधिक फल कहा गया है। ऐसी हालतमें भावपूजाके प्रति अलगादर का कारण सम्यक् भावकी कमीका होना साफ जाहिर है। यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि भाव-पूजा के प्रति दिन दिन अधिक आदर करना अत्यन्त आवश्यक है।

(१३) प्रसङ्ग से अङ्गी वगैरहके सम्बन्धमें होनेवाली आशातनाओं को भी जानना जरूरी है। अङ्गीमें अनेक दीपक जलाये जाते है, जिनकी गरमी अपने को भी असह्य मालूम होती है तथा जिनसे चौमासे के दिनोंमें जीव विराधना भी ज्यादा होती है। कितने ही समय दीपक उघाड़ा (खुला) ही रख दिया जाता है जिससे कोई कम विराधना नहीं होती। ऐसा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

करना भक्तिके नाम पर आशातना करना है जयणा बिना की करणी कभी फलदायक नहीं होती है।

(१४) महोत्सवादिके प्रसंग पर वर घोड़ा (जल-यात्रा) निकाला जाता है, उस समय जिन बिम्ब का अत्यन्त सन्मान होना चाहिए, किन्तु वैसा नहीं होता है। इससे भक्ति नहीं होती और आशातना लगती है। यह प्राचीन जमाने में निकलनेवाली रथ-यात्रा का अनुकरण है। वह रथ-यात्रा किस रीतिसे सन्मान के साथ निकाली जाती थी इसका शास्त्रोक्त वर्णन पढ़ लेना चाहिये जिससे विदित हो जायगा कि हम लोग इस यात्रा के प्रति कितना अल्पादर करते हैं।

(१५) जिन मन्दिर के भीतर बैठकर कहीं २ ऐसी विकथाऐं और निन्दाऐं करनेमें आती है कि जो सुज्ञ पुरुष के चित्तमें खटके बिना नहीं रहती। यह तो प्रत्यक्ष आशातना है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिरजी के अन्दर तो सिर्फ धर्म चर्चा करनी हो तो या नवकारादि मंत्र का जाप करना हो या विधि युक्त देव बंदन करना हो या पूजा भणानी हो अथवा किसी प्रशस्त हेतु ही से बैठना या ठहरना उचित है अन्यथा निरर्थक अधिक समय तक ठहरने से औदारिक देह से और भी कोई आशातना हो जानी सम्भव है।

(१६) पूजा पढ़ाने के लिए बहुत से भाई अपना समय खर्च करते हैं, पर उसमें पहिले तो खुले मुंह बोलनेसे पूजा की पुस्तक पर तथा मन्दिरजीमें थूक पड़ जानेसे और मुंहकी दुर्गन्ध फैलनेसे आशातना होती है। देरासरके अन्दर प्रवेश करनेकी समयसे लेकर निकलने की बख्त तक उघाड़े मुंह से बोलना ही निषिद्ध है। अष्ट पुट मुखकोश और उत्तरासन का किनारा इसी ही के लिये है किन्तु इस तरफ बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता है। पुनः स्वयं क्या बोल रहे हैं। इसके अर्थ की विचारणा नहीं

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

की जाती है इससे प्रायः पोपट पाठ (तोते की राम राम) जैसा ही होता है। पूजा भणानेका फल परमात्माके गुणानुवाद से होनेवाली भाव पूजाके समान ही है किन्तु उसकी प्राप्ति अर्थ विचारणा के बिना नहीं हो सकती है।

(१७) पूजा पढ़ानेमें तथा चैत्यबंदनादि करने में कितने ही अर्थ के अज्ञान मनुष्य कभी २ यहां तक अशुद्ध बोल जाते है कि परमात्माकी स्तुति के बदले निन्दावाचक शब्दों का उच्चारण कर बैठते हैं। कौन स्तवन किस समय एवं किस जगह बोलना इसकी विचारना तो भला अर्थ शून्य मनुष्य कर ही कैसे सकता है? इसी लिये स्तवनादि के अर्थ का विचार करनेके लिये एवं समझने के लिए परिश्रम करना चाहिये और शुद्ध शब्दोच्चारण के साथ साथ अर्थ पर गहरा विचार करना चाहिए, जिससे आशातना न होकर भक्ति का फल मिलेगा।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(१८) इसी हो विषयमें जिन पूजा के उपगरणोंकी ओर भी ध्यान आकर्षित किया जाता है। हरेक उपकरण स्वच्छ रहना चाहिये। कलश सीधी नली वाला होना चाहिये कि जिसमें जल का असर न रहने पावे और जीव जन्तु उत्पन्न न होवें। वह भीतर से और नली में भी अच्छी तरह पोंछा जाकर साफ होना चाहिये। इसमें जितनी लापरवाही होगी उतनी ही अधिक जीव विराधना और आशातना होगी। यह हर समय ख्याल रखना चाहिये।

इस लेख को यहीं समाप्त किया जाता है, इसमें मुख्य २ बातोंके सम्बन्धमें बतलाया गया है इसके सिवाय दूसरी अनेक छोटी मोटी बातें ऐसी है कि जिनके द्वारा विचार शून्य मनुष्य बड़ी भूल करते हैं। उनमें कुछ भूलें ऐसी भी होती है जो अज्ञानता के कारण से क्षमा के योग्य हो सकती है परन्तु कितनीक भूलें ऐसी होती है जो क्षमा के योग्य नहीं होतीं। इस

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लिये अज्ञानतावश भक्ति के नाम पर आशा-तनाऐं होनेसे लाभको जगह हानि हो जाती है। और उस हानि को रोकने के उद्देश्य से ही उपरोक्त लेख को लिखने का प्रयास किया गया है। आशा है कि सुज्ञ जन इसे सार्थक करेंगे।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

"जिनराज-भक्ति"

(लेखकः—कुंवरजी आणंदजी—भावनगर)

जब भक्तिके प्रति होनेवाली आशतनाओं का लेख लिखा गया उस समय कितने ही बन्धुओंकी ओर से यह मांग आई कि इस लेख के साथ २ इसी की पुष्टि में भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए इसके सम्बन्धमें भी एक लेखकी आवश्यकता है। कई सुज्ञ बन्धु तो ऊपर के लेख ही से भक्ति के प्रकार समझ सकते हैं, परन्तु कितनेक सरल प्राणियों के लिये तो स्पष्ट रूप से भक्ति को प्रतिपादन करनेवाले लेख की जरूरत रहती है इसी मांग पर इस लेख को लिखने की प्रवृति की जाती है।

तीर्थंकर भगवान हमारे परमोपकारी है, हमको मोक्ष का शुद्ध मार्ग बतानेवाले हैं और सर्व दोषोंसे विमुक्त हैं साथही सर्व गुणों से

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

संयुक्त हैं। ऐसे परमात्मा की भक्ति बंदन, नमन, पूजन और स्तबनादि से होती है और ऐसा करनेका प्रथम कारण यह है कि उपकारी का उपकार मानना यही कृतज्ञता है। उपकार मानने ही से यह कहा जा सकता है कि यथा-शक्ति भक्ति करनेमें सामर्थ प्राप्त होगी। दूसरा कारण यह है कि वे शुद्ध मार्गोपदेशक थे। यह आत्मा अशुद्ध मार्गोपदेशक के बताये हुए मार्गमें चलने ही से आज तक संसारमें परि-भ्रमण कर रहा है। जो स्वयं ही शुद्ध मार्गको नहीं पा सके वे दूसरोंको शुद्ध मार्ग कैसे बतला सकते हैं? लौकिक देव और लौकिक गुरु स्वयं शुद्ध मार्ग की अनभिज्ञता से (नहीं जाननेसे) अभी तक संसारमें भटक रहे हैं वे यदि शुद्ध मार्ग के ज्ञान का दावा करें, तो यह उनका मिथ्याभिमान है। जब तक रागद्वेष का सर्वथा क्षय नहीं होता अर्थात् जब तक वीतरागपन की प्राप्ति नहीं होती तब तक शुद्ध मार्ग बताया

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ही नहीं जा सकता; क्योंकि जब तक असर्वज्ञ-पन रहा हुआ है तब तक सम्पूर्ण शुद्ध मार्गका कथन किया हो कैसे जा सकता है और खरा सर्वज्ञपन वीतराग दशामें ही प्राप्त हो सकता है, परमात्मा की भक्ति का यह दूसरा कारण है। तीसरा कारण यह है कि वे सर्वगुण-सम्पन्न हैं, अनन्त गुणोंके स्वामी हैं, साथ ही सर्व दोषोंसे सर्वथा मुक्त हैं। ऐसे परमात्माकी भक्ति अपनी आत्मामें भी वैसेही गुण प्रगट करती है। गुणो की भक्ति, गुणशील बनाती है यह शास्त्र सिद्ध है। ये ३ कारण मुख्य है और भी परमात्मा की भक्तिके कई एक कारण है। अब यह स्पष्ट हो गया कि परमात्मा भक्ति करने के योग्य है और भक्ति करना यह अपना अनिवार्य कर्त्तव्य है। अब भक्ति किस ढंगसे करनी चाहिए इसका विचार करते हैं।

ऊपर यह वर्णन किया जा चुका है कि परमात्मा की या किसी भी श्रेष्ठ गुणवान की

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भक्ति, बंदन, नमन, पूजन एवं स्तवनादि से होती है। परमात्मा की भक्ति कैसे करनी चाहिये? यह चैत्यवंदन-भाष्यादि में बहुत अच्छी तरहसे वर्णित किया गया है, उसी के आधार यहां पर भी कुछ संक्षेपमें वर्णन किया जाता है।

परमात्मा स्वयं तो इस समय विद्यमान नहीं है अतः उनकी भक्ति के लिए उनकी मूर्ति की भक्ति करनी चाहिये। उनका गुणानुवाद करना, तथा उनकी आज्ञा का यथाशक्ति पालन करना चाहिये इस तरह भक्ति तीन प्रकारसे हो सकती है। भक्ति बहुमान में दर्शन पूजन का समावेश होता है। परमात्मा की मूर्ति जो इस आत्माको आत्महित साधनमें परम आलंबन भूत है, उसका तीनों ही काल दर्शन और तीनों ही काल पूजन के लिये शास्त्रमें विधान है। प्रातः काल दर्शनके समय वासक्षेप पूजा की जाती है, मध्यान्ह के दर्शन कालमें अष्ट प्रकारी पूजा की

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जाती है और सायंकाल के दर्शन के समय धूप दीपादि से पूजा की जाती है। उपरोक्त तीनों अवसरों पर दर्शन पूजन के साथ २ चैत्यवंदन आदि भाव पूजा अवश्य करनी हो चाहिये क्योंकि द्रव्य-पूजा भाव-पूजा के ही निमित्त को जाती है। संसारी जीवोंको द्रव्य बिना भाव की उत्पत्ति हो नहीं सकती, इसी लिये द्रव्य-पूजन को आवश्यकता है। भाव पूजाका महत्व विशेष है कारण द्रव्य-पूजा तो परिमित फलकी दाता है और भाव-पूजा अपरिमित फल दाता है।

दर्शन अथवा पूजन करने को जाते समय पांच अभिगमन और दशत्रिक साचवना जरूरी है। यह बात मुख्यरूपसे ध्यानमें रखनी चाहिये क्योंकि इसमें भक्तिके सभी प्रकारोंका समावेश हो जाता है। दर्शन करनेके निमित्त घरसे निकल कर मार्ग में चलते २ जो फल शास्त्र-कारों ने बतलाया है वह केवल एकाग्रचित्त से

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन पूजन सम्बन्धी वा परमात्मा के गुणों सम्बन्धी विचारों में लयलीन होकर चलनेवाले पुरुषोंके लिये है। मार्गमें कई तरहके व्यवसायों को करता हुआ, अनेक प्रकार की विकथाओं को करता हुआ या अनेक प्रकार के आरम्भ समारंभ करने की आज्ञा देता हुआ जो जिन-मन्दिर जाता है उसे इस फल की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। प्रभातकाल में दर्शनार्थ जाने वालों के लिए सर्व स्नान की आवश्यकता नहीं है, परन्तु हाथ पैर वगैरह शरीरके अशुद्ध भागों को जल से शुद्ध करके जाना चाहिये। सन्ध्या काल में भी इसी तरह करना उचित है क्योंकि इन दोनों काल में प्रभुजी को अंग पूजा नहीं की जाती है अतः सर्व स्नान अनावश्यक है मध्यान्ह कालमें अष्ट प्रकारी पूजा की जाती है, इसलिए उस समय बन सके जहां तक अपने घर ही से स्नान करके * शुद्ध होकर, शुद्ध वस्त्र पहिन कर मार्ग में अपवित्र वस्तु तथा मनुष्य

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

या पशु वगैरह का संसर्ग न हो इस तरह से उपयोग पूर्वक जिन-मन्दिर जाना चाहिये। स्नान करने की जगह जीवाकुल नहीं होनी तथा सचित्त मिट्टी वाली भी नहीं होनी चाहिये तथा सूर्य का ताप (धूप) पहुंचे एवं जल सूख जाय ऐसी जगह चार पायेदार बाजोठ के

---

* स्नान करनेके समय निम्नलिखित श्लोक जो आचारोपदेश नामक ग्रन्थसे लिये गये हैं उस पर विशेष ध्यान देना चाहिये—

अथ स्वमन्दिरे यायाद्, द्वितीये प्रहरे सुधीः।
निर्जन्तु भूवि पूर्वाशा भिमुखः स्नानमाचरेत ॥१॥
सप्रणालं चतुष्पादं, स्नानार्थं कारयेद्वरम्।
तद्बद्ध ते जले यस्माज्जन्तुर्बाधा न जायते ॥२॥
रजस्वलाया मलिन स्पर्शे जाते च सूतके।
मृत स्वजन कार्ये च सर्वाङ्ग स्नान माचरेत ॥३॥
अन्यथा शीर्ष वर्जं च वपू प्रक्षालयेत्परम्।
कवोष्णोनाल्पपयसा, देव पूजा कृते कृती ॥४॥
चन्द्रादित्य कर स्पर्शात्पवित्रं जायते जगत्।
तदाधारं शिरो नित्यं, पवित्रं योगिनो विदुः ॥५॥
दयासाराः सदाचारास्ते सर्वे धर्म हेतवे।
शिरः प्रक्षालनान्नित्यं, तज्जीवोपद्रवो भवेत् ॥६॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर बैठकर कुछ उष्ण जल से समस्त शरीर साफ हो जाय, ऐसे ढंगसे हाथोंसे मल कर परिमित जलसे स्नान करनी चाहिये। उस समय केश, कंठ, कपाल, बगल, कधा, काछ

ना पवित्र' भवेच्छीर्षं, नित्यं वस्त्रेण वेष्टितम्।
अप्यात्मनः स्थिते स त्व निर्मल द्युति धारिणः ॥७॥
स्नानायेति जलोत्सर्गादभ्नंति जन्तून् बहिर्मुखान्।
मलिनं कुर्वते जीवं, शोधयंति वपुर्हि ते ॥८॥
विहाय पोतकं वस्त्र', परिधाय जिनं स्मरन्।
यावज्जलार्द्रौ चरणो, तावत्तत्रावतिष्ठते ॥९॥
अन्यथा मल संश्लेषाद् पवित्रौ पुन. पदौ।
तल्लीन जीव घातेन, भवेद्वा पातकं महत् ॥१०॥

श्लोकार्थ :—दूसरे प्रहरमें श्रावक अपने घरमें जीव रहित भूमि पर पूर्व दिशा में मुख करके स्नान करे। अच्छी नलीवाला बाजोठ (पाटा) इस ढंग का बनवावे कि जिसमें उष्ण पाणी रहनेसे जीव की हिंसा न हो। ऐसे बाजोठ पर बैठकर स्नान करे। रजस्वला स्त्री अथवा चंडाल का स्पर्श हुआ हो या घरमें सूतक हो या

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

वगैरह अच्छी तरह साफ करनी चाहिए। स्नान के बाद तुरंत ही शरीरको अच्छे तौलिये (गमछे) से पौंछ कर निर्जल करना चाहिए।

स्वजनादि की मृत्यु हुई हो तो मस्तक सहित सर्वांग स्नान करे। अन्था मस्तक के अतिरिक्त शरीर को धो ले। पुन्यवंत जीव किंचित उष्ण और यथासंभव थोड़े परिमाण में जल लेकर देव पूजा के लिये स्नान करे। योगीश्वर का कथन है कि मस्तक निरंतर पवित्र है क्योंकि चन्द्र और सूर्य की किरणों के स्पर्श से समस्त जगत पवित्र होता है और जगत का आधार मस्तक माना गया है। जिन आचारोंमें जीव दया प्रधान है वे ही आचार धर्म के कारण हैं अतः नित्य मस्तक धोने से मस्तक के जीवोंका उपद्रव होनेसे अधर्म होता है इसलिये नित्य मस्तक स्नान करना वर्जनीय है। मस्तक कभी भी अपवित्र नहीं होता है क्योंकि वह हर समय वस्त्र से ढका रहता है एवं निर्मल तेजवाली

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पीछे पूजाके वस्त्र पहिननेके प्रथम एक ऊनी वस्त्र (कंबली) पहिनना चाहिए कि जिससे शरीर सर्वथा निर्जल हो जावे। पूजा के वस्त्र यथा सम्भव स्वच्छ और श्वेत होने चाहिये। ये वस्त्र पूजाके पश्चात प्रतिदिन धोये जांय ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। इसी कारण से हर रोज के लिए सूती वस्त्र हों तो और भी अनुकूल होंगे। पर श्रीमन्त तो रेशमी वस्त्र भी रख कर नित्य धुला सकते हैं।

आत्मा याने जीवकी जिसमें स्थिति रही हुई है।

स्नान के समय के वस्त्र को छोड़कर, दूसरे वस्त्र को पहिन कर जिनेश्वर देवका स्मर्ण करता हुआ, जब तक भीगे पैर रहें तब तक वहीं खड़ा रहे क्योंकि भीगे पैर धरती पर रखने से मैल पैरों पर लग जायगा और इससे वे फिर अपवित्र हो जांयगे एवं गीले पैरों से जीव का संसर्ग होनेसे जीव विराधना होगी जिससे महान् पाप होगा।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे वस्त्र पहिन कर अष्टपुट मुखकोश बांध कर पूजाके उपकरण साथ लेकर जिन-मन्दिर जाना चाहिए। मुखकोश अङ्ग पूजा ही के समय बांधा जाता है ऐसा नहीं समझना चाहिए जब तक गर्भगृह के अन्दर रहे तब तक तो जरूर बांधे रखना चाहिये. कारण गर्भगृह के अन्दर खुले मुख बोलनेसे दुर्गन्ध फैलती है तथा थूक भी उछलता है। इसलिये गर्भगृह से निकलने के बाद मुखकोश खोलना चाहिए। इसके साथ २ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जल, चन्दन, पुष्प पूजा करते समय मुख-कोश बांधे रहने पर भी बोलना नहीं चाहिए मौन रह कर परमात्मा के गुणों का चिन्तन करते हुए अंग पूजा करनी चाहिए, यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है।

(१) तीनों कालोंमें जिन-मन्दिर जाते समय ५ अभिगमन निम्नलिखित तरीकेसे साचवना चाहिए। १ सचित्त वस्तु तथा उप-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लक्षण से कोई भी भोजन के काम में आने वाली वस्तु जिन-मन्दिरके गढ़में नहीं ले जानी चाहिये। इससे जिन-पूजा के निमित्त जल, पुष्प, फलादि का निषेध नहीं समझना, बल्कि अपनी शोभा की पुष्प मालादि का त्याग कर देना चाहिये।

अचित्त वस्तु तथा उपलक्षण से शरीर की शोभा के साधन लेने चाहिये। जिन-पूजा में आभूषणोंके त्याग की तो आवश्यकता नहीं, परन्तु राजचिन्ह जैसे मुकुट कुंडल वगैरह का त्याग आवश्यक है। अर्थात ऐसी चीजें जिन-मन्दिर के बाहर रख देनी चाहिये।

मनको एकाग्रता व स्थिरता रखनी चाहिये।

प्रभु की मूर्ति दृष्टिमें पड़े उसी समयसे ही दोनों हाथ जोड़े रहना चाहिये।

एक वस्त्र का उत्तरासन करना चाहिये (यह उत्तरासन चैत्यबंदनादि के समय भूमि प्रमार्जन के उपयोग में आता है)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इन ५ अभिगमनों के अलावा राजाओंके लिए खड्ग, छत्र समझना चाहिये। जूते, मुकुट और चामर का त्याग करना चाहिये। इसी तरह साधारण लोगोंको लकड़ी, घड़ी, छत्ता, जूते वगैरह बाहिर छोड़ देना चाहिये। मोजे पहिन कर जिन-मन्दिर में प्रवेश करना उचित नहीं है (कारण कि यह भी एक तरह की पगरखी है)।

(२) इस तरहसे ५ अभिगमनों को साचव कर जिन-मन्दिरमें प्रवेश करते ही पहिले अग्र-द्वारमें अन्य सब गृह-व्यापारादि की त्यागरूप 'निस्सिही' कहनी चाहिये। इसके पश्चात अन्य कार्य सम्बन्धी कोई भी आलाप-संलाप नहीं करना चाहिए। जिन-मन्दिर में आनेवाली स्त्रियों एवं रात्रिमें जिनमन्दिर की छत पर रहनेवाले पुरुषोंको अन्य किसी भी प्रकार की बातचीत नहीं करनी चाहिए। उन्हें स्मर्ण रखना चाहिये कि उन्होंने स्वयं ऐसी ही प्रतिज्ञा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

करने के पश्चात मन्दिरमें प्रवेश किया है। स्त्रियां प्रदिक्षणा देते समय तथा बाहिर निकलते समय अनेक प्रकार की सांसारिक बातें करती हैं, परन्तु ऐसी बातें करनेसे परमात्माकी आज्ञा एवं अपनी की हुई प्रतिज्ञा का भी भंग होता है यह उनको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये।

(३) जिन-मन्दिर में प्रवेश करके प्रभुके सामने जाकर दूर हीसे मुख दर्शन करके पश्चात प्रभु की दाहिनी ओर से ३ प्रदिक्षणा देनी चाहिये। इस प्रदिक्षणामें परमात्मा के गुणोंका चिन्तवन करना चाहिये, ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीन पदोंका तीन प्रदिक्षणा देते समय चिन्तवन करना चाहिये। परन्तु साथ ही साथ जीवयतना अवश्य करनी चाहिये। किसी भी अशुचि पदार्थादिक से कहीं आशातना होती हो तो उसका निवारण करना तथा करवाना चाहिए। यह प्रदक्षिण-त्रिक भव भ्रमण निवारण के लिए परम साधन है। पुरुषवर्ग में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तो प्रायः यह प्रवृत्ति अधिकांश रूपसे लुप्त हो गई है मगर यह प्रधानतया आदरणीय है।

(४) तीन प्रदक्षिणा देकर मुख्य द्वारसे रंग मंडपमें प्रवेश करते समय दूसरीवार 'निस्सिही' कहनी चाहिये, यह निस्सही जिनमन्दिर संबंधी व्यापार की त्याग सूचक है। अब केवल जिन दर्शन व पूजन सम्बन्धी व्यापार ही करना रहा है। किसी समय यदि अन्दर आनेके बाद जिन-मन्दिर सम्बन्धी कोई कार्य स्मर्ण हो जावे, तो रंग मंडप से बाहिर निकल कर उस कार्यको करना व कराना चाहिये लेकिन अन्दर खड़े रहकर कोई हुक्म नहीं देना चाहिये।

(५) रंग मंडपमें प्रवेश करनेके पश्चात, गर्भ गुह के समीप जाकर पुरुषवर्गको प्रभुजी की दाहिने तरफ एवं स्त्रीवर्ग को बांई तरफ खड़े रह कर दर्शन करना चाहिये। चैत्यवंदनादि

१ इस विधि मार्गको तरफ लक्ष्य न देनेके कारण भीड़में कइयों को दर्शन तक नहीं हो पाते और स्त्री पुरुष एक जगह बैठनेसे शिष्टाचार का भी भंग होता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

करते समय भी इसी दिशा-विभाग को काममें लाना चाहिये तथा रंग मंडप से भी इसी तरह अपनी २ दिशा के द्वार से बाहिर निकलना चाहिये। प्रभूजीके सामने खड़े रहकर तो दर्शन चैत्यबंदनादि करना ही नहीं चाहिये क्योंकि इससे और कईयों के दर्शनमें अन्तराय पड़ती है और अविवेक भी दीखता है। स्त्री एवं पुरुषोंके निकलने का द्वार पृथक २ होता हैं। और इसी कारण रंगमंडपमें तीन द्वार होते हैं। शाश्वत चैत्योंमें भी तीन द्वार होते हैं। सिर्फ जहां चौमुखी-बिम्ब की स्थापना होती है वहां गर्भगृह के चार द्वार होते हैं।

(६) दर्शन करते समय पहिले तो अर्द्धांग नमन कर प्रणाम करना चाहिये। हाथ जोड़कर मस्तकमें लगाना और पश्चात खमासमण देने के समय दोनों हाथ, दोनों गोड़े और मस्तक इन पांचो अंगो को भूमि पर लगाना चाहिये। (हाथ और मस्तकको अधर रखनेवालोंका खमा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

समण सच्चा नहीं समझा जाता है) इसमें तीनों ही प्रकार के प्रणामों का समावेश हो जाता है।

(७) प्रणाम करते समय प्रभु की स्तुति, संस्कृत, मागधी गुजराती व नागरी (हिन्दी) श्लोक, गाथा, छन्द, दोहा इत्यादि से करनी चाहिये। उस समय एकसे लगाकर एकसौ आठ १०८ श्लोकादि तक बोलना चाहिये, साथही शब्दोच्चारण शुद्ध होना चाहिये अर्थका बराबर चिन्तवन करना चाहिये एवं प्रभुजी की प्रतिमा के सन्मुख अचल दृष्टि लगाये रखनी चाहिये। इस त्रिक को चैत्यबंदनादि के समय भी ध्यान में रखना चाहिये।

(८) दर्शन करनेके समय इधर उधर तथा पीछे की ओर देखना नहीं चाहिये, केवल परमात्मा ही के सामने दृष्टि जोड़े रखनी चाहिए।

(९) खमासमण देते समय पैर, गोड़े एवं हाथ रखने की जमीन को उत्तरासन के छोरसे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रमार्जन करना आवश्यक है। इस बात की हर समय ध्यानमें रखनी चाहिये।

(१०) प्रातःकाल एवं सायंकालमें दर्शन करनेके पश्चात अंग पूजा नहीं की जाती है। इसलिये मूलनायकजी आदि सर्व बिम्बोंका अच्छी तरह दर्शन करके प्रभुजीके सामने दाहिनी ओर ३ खमासमण देकर, चैत्यबंदन के प्रारम्भ में तीसरीवार 'निस्सिहो' कहनी चाहिये। यह 'निस्सिहो' जिन दर्शन व पूजा सम्बन्धी व्यापार को त्यागसूचक है। अब केवल भाव पूजा ही करने की है। इसलिए द्रव्य-पूजा का त्याग किया जाता है। प्रभुके निकट जो अक्षत, फल नैवेद्यादि रखे जाते है वे चैत्यबंदन करनेके पहिले ही रख देने चाहिये। क्योंकि चैत्यबंदन करते समय तो द्रव्य पूजा सम्बन्धी कोई भी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिये, उस समय तो सिर्फ प्रभुजीके सामने दृष्टि लगाकर एकाग्रचित्त से प्रभुजीके गुणों की स्तुति करनी चाहिये। इस

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

समय तो यथासम्भव प्रभुजी के और स्तुति कर्ता के बीचमेंसे कोई गुजरे नहीं ऐसा प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि मनुष्योंके बीचमें आ जानेसे अविच्छिन्न दृष्टिमें एवं ध्यानमें अन्तराय पड़ जाती है।

(११) अक्षत (चावल) का स्वस्तिक (साथिया) चार गति का अन्तसूचक है। तीन ढगले ज्ञान, दर्शन चारित्र रूप रत्नत्रयी के आराधन का सूचक है और इसके बाद सिद्ध-शिला की आकृति उस स्थानके प्राप्ति की परम इच्छा सूचक है। यह आकृति कैसी होनी चाहिये? यह जानने योग्य है। इसी ही प्रसंग में अक्षत का अष्टमांगलिक भी बनाने में आता है अथवा नंदावर्त्त भी किया जाता है, इसमें

नोटः—रिक्तपाणिनं पश्येत्तु, राजानं देवतं गुरुम्। नैमित्तिकं विशेषेण, फलेन फलमादिशेत्॥ भावार्थः—राजा, देव, गुरु और नैमेत्तिक (ज्योतिषी) के समीप खाली हाथ नहीं जाना चाहिये कुछ न कुछ फल लेकर जाना चाहिए क्योंकि फल से फल की प्राप्ति होती है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अक्षत अच्छे एवं यथासम्भव अखण्डित होने चाहिए चाहे फल संख्या कम हो अथवा अधिक मगर उत्तम जाति के अच्छे फल होने चाहिये। तुच्छ जाति के फल कभी नहीं चाहिये। इसके अनन्तर नैवेद्य तरीके मिठाई वगैरह कोई भी पदार्थ चढ़ाया जाय मगर वह अच्छा होना चाहिये। पश्चात् 'निस्सिहो' कह कर चैत्यबंदन करना चाहिये।

(१२) चैत्यबंदन का समावेश भाव पूजामें है। इसलिये पहिले द्रव्य-पूजा के सम्बन्धमें कह कर बादमें इसके विषयमें लिखा जायगा। द्रव्य-पूजा के अनेक प्रकार है। जिसमें मुख्य आठ प्रकार हैः—जल, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, फल और नैवेद्य। इन आठोंके सम्बन्ध का अलग २ विचार किया जायगा।

(१३) द्रव्य-पूजा में शरीर-शुद्धि, भूमि-शुद्धि, वस्त्र-शुद्धि, उपकरण-शुद्धि और अन्तमें भाव-शुद्धि की परम आवश्यकता है। शरीर-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धि एवं वस्त्र-शुद्धिके सम्बन्धमें आगे स्नानके प्रसंग में कहा जा चुका है। स्नान करने की भूमि जैसी निर्जीव होनी चाहिए वैसी ही जिन-मन्दिर के अन्दर की भूमि शुद्ध भी होनी चाहिये। कचरा, कूड़ा अच्छी तरह से निकाला हुआ होना चाहिये। त्रसजीवो की विराधना किसी भी स्थानमें नहीं होने पावे इसका ख्याल रखना चाहिए। समस्त उपकरण, ओरशीया (जिस पर चंदन रगड़ा जाता है) चंदन, रकेबी, कटोरी, पुष्प की छाबड़ी, धूपदान, मंगलदीप, कलश, जल रखनेका बड़ा बर्तन, प्रक्षालन करने की कुंडी, स्नात्र जल डालनेकी कुंडी, बालकुंची, अंगलुहणा, पाटलुहणा, मोरपंख, पट्टा, चामर, घंट इत्यादि सर्व वस्तुओंको प्रातःकाल ही में अच्छी तरह सावधानीसे देखकर तथा प्रमार्जन कर एवं खंखेर कर और धातुके सब पात्रोंको जलसे साफ कर पीछे उपयोगमें लाने चाहिए। इसमें दृष्टिसे देखते रहनेका लक्ष्य हर समय

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

रखना चाहिए क्योंकि इसके बिना असावधानीसे स्वच्छ करनेमें भी विराधना हो जानी संभव है।

(१४) जल निर्मल होना चाहिये, चन्दन ऊंची जातका सुगन्धमय होना चाहिये, पुष्प खिले हुए तथा पांखडी बिना खिरे हुए, सुवाशनायुक्त एवं विवेक पूर्वक लाये हुए होने चाहिए। और उसमें अगर जरूर होना चाहिए क्योंकि सुगन्धित द्रव्योंमें यह मुख्य पदार्थ है। दीपक के लिए घृत आदि उत्तम और अपने घर का होना चाहिए। अक्षत, फल, नैवेद्य के सम्बन्ध में आगे लिखा जा चुका है अस्तु यहां फिरसे दोहराना अनावश्यक है।

(१५) चन्दन-पूजाके लिए केशर की अपेक्षा बरास (घनसार) अधिक होनी चाहिए। जैसे केशर मनोहर वर्ण और सुगन्ध देती है वैसे ही बरास भी खरी शीतलता देती है। पुष्प हरेक को दृष्टि से भली प्रकार देखना चाहिये। धूप के लिए कोयले सुलगे हुए होने

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये। यथासम्भव चन्दन-पूजा की केशर अपने ही हाथ से घिसनी चाहिये यदि नहीं बन सके तो पूजारी से विवेक पूर्वक मुखकोश बंधाकर ओरशिया और चन्दन अच्छी तरह से साफ करवा कर पीछे निर्मल जलसे घिसवाना चाहिये। * दीपक की बाट (बत्ती) अपनी ही रूई वा सूत की होनी चाहिये।

(१६) प्रथम जल-पूजा करते समय मोरपंख का उपयोग जरूर करना चाहिये। और यथा-संभव जीवयतनाका खूब ध्यान रखना चाहिए। पहिले श्रीमूलनायकजी ही का अभिषेक करना चाहिये, उस समय जलके साथ अधिकांश रूप से दूध एवं अल्प दही, घृत और शर्करा (बूरा) मिलानी चाहिये यह पंचामृत है प्रसंग-वश तीर्थजल, गुलाबजल बगैरह भी मिलाना चाहिये अभिषेक के पीछे भीगे वस्त्र से प्रथम दिवसकी

* केशर घसने का ओरशिया ऐसे स्थान पर रखना चाहिये जहां प्रभुकी दृष्टि नहीं पड़ती हो।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तमाम केशरं को दूर करनी चाहिये, अपने हाथ से सहज ही में दूर नहीं सके, ऐसी चिपकी हुई केशर को हटाने के लिए ही सिर्फ ढीले हाथसे बालकुंची का प्रयोग करना चाहिये। इसके बाद फिर शुद्ध जलसे अभिषेक करवा कर पट्ट-लुहण विवेक पूर्वक करना चाहिये। उस पट्टलुहण का प्रभुजी से स्पर्श नहीं होना चाहिये। तथा विशाल एवं उज्वल अंग लुहणे से दोनों हाथोंसे प्रभुजीका शरीर निर्जल करना चाहिए। अंगलुहणा फटा हुआ व मैला जरा भी नहीं होना चाहिये। अंगलुहणे तीन करने चाहिये ताकि किसी भी प्रकार से जलांश नहीं रहने पावे। क्योंकि जहां जलांश रह जाता है वहां लील बैठ जाती है और कचरा भी तुरंत चिपक जाता है।

(१७) अंगलुहण करनेके पीछे प्रभुजीके शरीर पर बरास (घनसार) का विलेपन करना चाहिए और जो केवल मुखाकृति को छोड़ कर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सब जगह करना चाहिये। पीछे केशर मिश्रित चन्दनसे क्रमशः दाहिना बांयां अंगूठा, दाहिना बांया गोंडा, दाहिना बांया हाथ, दाहिना बांया कंधा, मस्तक, कपाल, कंठ, उर और उदर इन नव अंगों की पूजा करनी चाहिये। पश्चात विशेष अंगी रचनी हो तो सोने चांदी के वर्क, बादला और पुष्प चढ़ाना चाहिये एवं उस पर विशेष तिलक करना चाहिये।

(१८) पुष्प चढ़ानेके समय एक पुष्प मस्तक पर अवश्य ही चढ़ाना चाहिये और हो सके तो सम्पूर्ण सुन्दर माला चढ़ानी चाहिये। बाकी के पुष्प शोभा दें वैसे ही चढ़ाये जाने चाहिये. मगर पुष्पोंको कभी भी मरोड़ना नहीं चाहिए। सुई से सिये हुए पुष्पों का हार वगैरह कभी भूलकर भी नहीं चढ़ाना चाहिए। ऐसे हारादि चढ़ानेसे प्रभुकी आज्ञाका भंग होता है। पुष्प ग्रंथीम् अर्थात गुंथे हुए, वेढीम अर्थात बींटे हुए, पुरिम अर्थात पोये हुए, संघातिम

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात एक साथ जोड़े हुए इस तरह से चार प्रकार से चढ़ांए जाते है। इसमें सुई से सीये जानेवालोंका समावेश नहीं है क्योंकि इस तरह से सीकर हार बनाने से जीव जयणा नहीं हो सकती। इसके अलावा और भी कई तरह की हानियां हैं, जिनका वर्णन स्थानाभाव से यहां नहीं किया जाता है।

(१६) धूप-दीपादि अग्र-पूजा गर्भगृह के बाहिर ही करनी चाहिए। आजकल धूपदान, मंगलदीप चामरादि चीजें हिफाजत के वास्ते गर्भगृह के अन्दर ही रखी जाती है और इसी कारण इनकी पूजा भी अन्दर ही रह कर की जाती है परन्तु इसमें अविवेक अधिक बढ़ता है और धूपदीप अन्दर किये जानेसे गर्भगृह कुछ दिनोंमें काला हो जाता है इसलिए इन दो पूजाओंको यथासम्भव गर्भगृहसे बाहिर निकल कर मुखकोश खोलकर करनी चाहिए और यदि कभी अन्दर ही रहकर करनी पड़े तो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जहां तक बन सके प्रभुजी से दूर ही रह कर करनी चाहिए तथा अगरबत्ती यदि सुलगाई हुई होवे तो उसे हाथमें नहीं रखकर धूपदान में रखकर धूप करना चाहिए। दीपक भी इसी तरह से दूर रखना चाहिए। दीपक अनावरित (उघाड़ा) कभी भी नहीं छूट जाय इसका ध्यान रखना चाहिए तथा धूप का धूम्र (धूंआ) प्रभुजी तक न चला जाय इसका पूरा ध्यान रखना चाहिए।

(२०) अक्षत, फल नैवेद्य को यथाशक्ति बढ़ाते रहना चाहिए। अक्षतसे नंदावर्त्त करना अथवा अष्ट-मांगलिक मांडना चाहिए। फलमें एक श्रीफल जरूर चढ़ाना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक ऋतु में मिलने वाले हरे फल भी जरूर चढ़ाने चाहिए। प्रभुजी के समीप एकबार रखे हुए फलका भी स्वयं उपभोग नहीं करना चाहिए। नैवेद्य में मिश्री मीठे चणे अथवा पतासा चढ़ाकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए पर स्वयं काममें लावे ऐसी अनेक जाति की मिठाई भी चढ़ानी चाहिए, पर इसमें भी इतना जरूर ख्याल कर लेना चाहिए कि कहीं वह मिठाई झूठे (ऐंठे) हाथोंसे छुई हुई न हो। मिठाई स्वच्छ होनी चाहिए।

(२१) अष्ट-प्रकारी पूजामें द्रव्य वृद्धि का भी समावेश होता है, इसलिए हमेशा यथा-शक्ति द्रव्य भी चढ़ाना चाहिए। बादमें चामर आदि प्रातिहार्यों की भी पूजा करनी चाहिए। चामर विवेकपूर्वक दूर रहकर बींजना (डुलाना) चाहिए तथा घंटा बजाना चाहिए इत्यादि करते हुए द्रव्य-पूजा की समाप्ति करनी चाहिए।

(२२) द्रव्य-पूजामें और भी कई बातोंका समावेश हो जाता है। यहां जो कुछ बताया गया है वह नित्य की जाने वाली अष्ट-प्रकारी पूजा के सम्बन्ध में है। बाकी पर्वोंमें तथा तीर्थोंमें विशेष रीतिसे पूजा भक्ति करनी चाहिए उस समय अपनी शक्तिको न छिपा कर जिस

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उपाय से शासन की उन्नति हो, अनेक जीव धर्म को प्राप्त करें, सम्यक्त्व दृढ़ एवं निर्मल हो वैसे ही ढंगसे पूजा भक्ति विशेष रीतिसे करनी चाहिए। इसके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें विधिवादमें यथेष्ट उल्लेख मिलता है एवं चरितानुवाद में तो अनेक पुण्यशाली प्राणियोंने आचरण किया है। इसीसे समझ लेना चाहिए। यहां विस्तार हो जानेके कारण विशेष नहीं लिखा जाता है। पर यह मुख्य रूपसे ध्यान में रखना चाहिए कि द्रव्य-पूजाके प्रति किंचित भी अनादर व अल्पादर कभी नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा किया गया तो अवश्य भव वृद्धिके कर्म बन्धेंगे।

(२३) जिनेश्वर की पूजा करते समय भावना कैसी होनी चाहिए व प्रभु की कौनसी अवस्था का चिन्तन करना चाहिये, यह जानना जरूरी है। भगवान की छद्मावस्था, ज्ञानावस्था एवं सिद्धावस्था इन तीनों अवस्थाओंका चिन्तवन करना चाहिये। छद्मावस्था के गृहस्थपन तथा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनिपन ये दो भेद हैं। प्रभुजीको स्नान कराते एवं पूजन करते उनकी बाल्यावस्था तथा राज्य अवस्थाका चिन्तवन करना चाहिये। चामरादि प्रातिहार्य संयुक्त देखकर उनकी केवली अवस्था का चिन्तवन करना चाहिये एवं पल्यंकासनमें व कायोत्सर्ग मुद्रामें स्थित देखकर सिद्धावस्थाका चिन्तवन करना चाहिये अथवा इन्हीं तीन प्रसंगों में पिंडस्थ, पदस्थ और रूप रहित इन तीन अवस्थाओंका चिन्तवन करना चाहिये। पिंडस्थ अर्थात छद्मावस्था, पदस्थ अर्थात केवली अवस्था एवं रूप रहित अर्थात सिद्धावस्था, यों समझना चाहिये। कहीं २ रूपस्थ और रूपातीतको लेकर चार अवस्थायें भी मानी गई हैं। भगवान की सेवा भक्ति करते समय मूर्तिकी उन्हीं अवस्थाओंको स्मरण करते हुए एवं मूर्ति उन्हीं अवस्थाओंमें है, इसको लक्ष्यमें रखकर सेवा भक्ति करनी चाहिये। इसीसे उन २ अवस्थाओंके योग्य भक्तिकी गई, यह समझा जा सकता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

(२४) प्रभु-पूजा के लिए सर्वत्र दो वस्त्र रखने का विधान है। एक धोती और दूसरा उत्तरासन, मुखकोश उत्तरासन की छोरसे बना कर बांधा जाता है। आजकल मुखकोश ठीक आठ पुड़तवाला बांधा जाय इसलिए अलग रूमाल भी रखा जाता है। जिससे अष्टपुट करने पर मुख की गन्ध बाहिर न निकले ऐसा मुखकोश बांधना चाहिये। उत्तरासन एक ही वस्त्र का जिसमें किसी प्रकार का जोड़ (सान्ध) लगा हुआ न हो तथा दोनों ओर से किनारी-दार हो ऐसा रखना चाहिए।

(२५) द्रव्य-पूजा करनेके पश्चात भाव-पूजा करनेका अवसर प्राप्त होता है, द्रव्य-पूजा अवग्रह के अन्दर रहकर की जाती है। क्योंकि उसमें प्रभुजीके अंग के साथ सम्बन्ध है। भाव-पूजा अवग्रह से बाहिर रहकर की जाती है। शास्त्र-कारों ने अवग्रहका प्रमाण जघन्य नव (९) हाथ तथा उत्कृष्ट साठ (६०) हाथ बताया है, पर अभी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

देरासर के प्रमाणानुसार ही रखा जा सकता है क्योंकि यदि कहीं पर देरासर ही नव हाथ प्रमाण का नहीं है तो यह जघन्य अवग्रह नौ हाथ का भला कैसे रखा जा सकता है ? अतः यथायोग्य रखना चाहिये। अवग्रह बाहिर निकल पर तीन क्षमासमण देकर आदेश मांग कर चैत्यबंदन करना चाहिये।

(२६) चैत्यवन्दन के ३ भेद है। जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जघन्य तो सामान्य नमस्कारात्मक श्लोकादि बोलने ही से किया जा सकता है। मध्यम चैत्यबन्दन आजकल की प्रवृत्ति अनुसार प्रथम चैत्यवंदन बोलकर नमुत्थुणं कहना, स्तवन कहना, जयवीयराय, अरिहंत चेइयाणं कहकर काउसग्ग करके स्तुति कहना इसीको कहते हैं। और उत्कृष्ट चैत्यबंदन जिसमें आठ थुई से देववन्दन किया जाता है उसको समझना चाहिये और जिसमें ५ शक्रस्तव किये जाते हैं। बाकी ५ दंडक और बारह

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अधिकार तो चार स्तुतियों से दैवसिक प्रतिक्रमण के प्रारम्भ में एवं रात्रिके प्रतिक्रमण के प्रान्त भागमें, देव वन्दनमें किये जाते हैं, इससे इसके अन्दर भी आ जाता है। तीनों काल मध्यम चैत्यवन्दन तो अवश्य करना चाहिये।

(२७) चैत्यवंदन स्तवन और स्तुति ये तीनों चीजें प्रायः गुजराती भाषामें (हिन्दी, मारवाड़ी आदि में भी) पद्यमय रचना में कहनेमें आते हैं उनका उच्चारण करना चाहिये तथा भावार्थ पहिले ही से समझ रखना चाहिये ताकि कहते समय अर्थ विचारणा कर सके। साथ २ 'जंकिंचि नमुत्थूणं' वगैरह विधि के सुत्रोंको जो मागधी भाषामें है, शुद्ध कहना चाहिए। साथ ही पूर्णोच्चार करते हुए कहना तथा उनको अर्थ विचारणा करनेके लिए उनके भावोंको पहिले ही से समझ रखना चाहिये। जो लोग अर्थ समझे बिना चैत्यवंदन करते है वे

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ठीक २ उच्चारण भी नहीं कर सकते हैं क्योंकि शुद्धोच्चारण का आधार अर्थ की समझ पर अधिक है। कभी २ तो अर्थ नहीं समझे हुए लोग चैत्यवंदन करनेवाले पाठ अशुद्ध बोलकर स्तुति के बदले निन्दा कर बैठते हैं। यद्यपि उनका अध्यवसाय निन्दा करनेका नहीं है, इसलिए मानसिक बन्ध तो नहीं पड़ता है, मगर वचन सम्बन्धी तो अशुभ बन्ध पड़ ही जाता है। चैत्यबंदन, स्तवन और स्तुति जो गुजराती व देशी भाषामें होती है, उनके अर्थको समझने की बहुत से आदमी आवश्यकता ही नहीं समझते और जैसा याद रहा हुवा होता है वैसा ही बोल देते हैं कि जिसको सुनने से अर्थ समझनेवालोंको उनपर बड़ा खेद होता है।

(२८) चैत्यबंदन, स्तवन व स्तुति कहां २ कहनी चाहिये? कौनसा चैत्यबंदन कौनसा स्तवन और कौनसी स्तुति कहां कहने योग्य है? इनको भी समझना बड़ा जरुरी है। कितने ही

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

चैत्यबंदन, स्तवन और स्तुति ऐसे हैं जो सर्वत्र बोले जाते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो सिर्फ स्त्रियों ही के बोलने योग्य हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो सिर्फ पुरुषों ही के बोलने योग्य हैं और कुछ ऐसे भी है जो साधु साध्वी के बोलने योग्य हैं।

इनकी विचारणा स्वयं करे अथवा जानकारों से पूछे तो हो सकती है। यहां इस लेखमें इनके सम्बन्ध में समग्रता पूर्वक नहीं कहा जा सकता है पर तो भी उदाहरण स्वरुप कुछ बतला दिया जाता है जैसे स्तवनादि जो जिस स्थल के होते हैं वा जिस तिथि को बोलने के होते हैं वे वहीं बोले जाते हैं। सामान्य जिन-स्तुतियां सभी जगह कही जा सकती हैं। स्तुतियां जो चार हों तो उनमेंसे प्रथम, द्वितीय, त्रितीयतो मध्यम-चैत्यबंदनके अन्तमें कही जाती हैं, पर चौथी स्तुति कभी नहीं कही जाती है। जो स्तवनादि स्त्रियां के ही बोलने के हैं उन्हें

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

केवल स्त्रियां ही बोल सकती हैं। जिन स्तवनोंमें द्रव्य-पूजाका समावेश है व जो स्तवन साधुवर्ग के कहने के नहीं है उन्हें केवल श्रावकवर्ग ही बोल सकता है अर्थात उन्हें साधु साध्वी कभी नहीं बोल सकते। स्तवन परमात्मा की स्तुति के, प्रार्थना के, गुणानुवाद के, आत्मनिन्दाके एवं परमात्माके बहुमानके होने चाहिये। और पूर्व पुरुषोंके रचे हुए महान गम्भीर अर्थवाले होने चाहिये। तुच्छ शब्दोंवाले एवं निःसार उक्तिवाले एवं अल्प भावार्थवाले ऐसे आधुनिक बने हुए स्तवन कहने योग्य नहीं है। चैत्य-वंदन स्तवनादि मधुर स्वर से खूब शान्ति के साथ कहने चाहिये, पर व्यर्थ उतावलसे जिसमें पूरा शब्दाच्चारण भी नहीं हो पाता है, कभी नहीं कहना चाहिये।

(२६) द्रव्य-पूजा भाव-पूजाकी कारण भूत होनेसे भाव-बृद्धि के ही निमित्त की जाती है इसलिये शनैः शनैः इस साधन से भाव-वृद्धि कर भाव-पूजामें विशेष कालक्षेप करने की

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आदत डालनी चाहिये क्योंकि इच्छित फल की प्राप्ति तो भाव-पूजा ही से हो सकती है। यह सर्वदा ध्यान में रखना चाहिये। नवकार वाली वा अनानुपूर्वी गिनने का समावेश भी भाव-पूजा ही में होता है। भाव-पूजा करनेमें ऐसा तल्लीन हो जाना चाहिये कि जिससे परमात्माके साथ तदाकारपन हो जाय अर्थात परमात्मा में और पूजक में कोई भेद नहीं रह जाय एवं जिससे परमात्मा को अथवा अपनी ही आत्मा को जो बास्तवमें परमात्मा ही के स्वरूपवाली है, परम प्रसन्नता हो। भाव-पूजा कर रुप बा बेठ (बेगार) रुप नहीं होनी चाहिये, कितने ही तो द्रव्य-पूजा करके ही चलते बनते हैं, भाव-पूजा तो करते ही नहीं, उन्हें समझना चाहिये कि वे परम आवश्यकीय कर्त्तव्य तो करना ही भूलते हैं।

(३०) चैत्यवंदन अथवा भाव-पूजा किस लिये करनी चाहिये इसका निमित्त व हेतु 'अरिहंतचेइयाणं' में जैसा बताया गया है वैसा ही

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

समझना चाहिये। क्योंकि वहां यह हेतु है कि चैत्यवंदन के प्रान्तमें कायोत्सर्ग करना पड़ता है उसी के सम्बन्ध में बताया गया है। यही हेतु व निमित्त भी सामान्य चैत्यवंदन के सम्बन्धमें भी समझना चाहिये।

(३१) चैत्यवंदन के प्रान्तमें जो एक नवकार का काऊसग्ग किया जाता है वह खूब शान्ति एवं स्थिरता से करना चाहिये। यदि एक नवकार का चिन्तवन यथार्थ रूप हो तो इतने ही समयमें प्राणी अनेक कर्मोंका क्षय कर देता है।

(३२) चैत्यवंदन में अधिकांश में तो योग मुद्रा ही रखनी पड़ती है। 'जयवीयराय' तथा 'दोजावंति' कहते समय मुक्तासुक्ति[२] मुद्रा रखनी चाहिये तथा 'जयवीयराय' कह कर खड़े होनेके पश्चात पैरों आश्री तो जिनमुद्रा[३] तथा

---

१ दोनों हाथोंकी दशों आंगुलियोंको मांहो माहे अन्तरित कर दोनों हाथोंको जोड़ पेट पर कोणी (अकुणी) को रखना।

२ दोनों हाथोंको बराबर रख ललाट के आगे रखना।

३ पैरों की अङ्गुलियों को जगह ४ आंगुल की दूरी पैर की पीछे की ओर कुछ उससे कम आंतरे सह पैरोंको रख कायोत्सर्ग करना। (देखो देववंदन भाष्य पृ० २७)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हाथ आश्री योग मुद्रा रखनी चाहिये। इन मुद्राओंका स्वरुप किसी विज्ञ पुरुष से समझ लेना चहिये एवं उसी प्रमाणसे इन मुद्राओंको बराबर उपयोगमें लाना चाहिये।

यह लेख जिनराजभक्ति कैसे करनी चाहिये इसकी सूचनाके लिए संक्षेप से लिखा गया है, यह विषय इतना विशाल है कि इसका जितना भी विस्तार किया जाय, हो सकता है, परन्तु अल्प बुद्धिवालों के समझमें आजाय जितना ही लिखना लेख का उद्देश्य है। भक्ति करने की इच्छा जब से होती है, उसी समय यह ध्यानमें रखना चाहिए कि कोई आशातना * नहीं हो जाय क्योंकि अशातना भक्तिका नाश कर देती है। जो मनुष्य भक्ति के असल रूप को समझ

* आशातना ८४, मोटी आशातना १० वर्जनी चाहिये। उपरान्त पूजा करते समय कलश, धूपदान वगैरह का प्रभुजी के लग जाना तथा बिम्ब का ढलजाना आदि आशातनाओंका निवारण करना चाहिये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कर विशुद्ध तन, मन, धनसे परमात्मा की भक्ति करता है उसका इस भव में तथा पर भव में अवश्य परम कल्याण होता है। गुणग्राही महानुभाव इस लेख को पढ़ कर इसका सदुपयोग करें जिससे उनका कल्याण होगा, इतना कह कर यह लघु लेख समाप्त किया जाता है।

कुंवरजी आणंदजी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जिनेन्द्र सम्बन्धीय साधारण ज्ञान।

(लेखक पं० चन्दुलाल)

हे जिज्ञासुवृन्द! इस संसार में अनन्त जीव हैं, वे सब ज्ञान, दर्शन, चारित्र गुण की अपेक्षा से एक समान हैं, अस्तु श्रीजिनेन्द्र भगवान और अपन ज्ञानादिक गुण की अपेक्षा से एक समान हैं। तो श्रीजिनेन्द्र भगवान पूज्य और अपन पूजक, श्रीजिनेन्द्र भगवान तो तीन लोक के स्वामी, और अपन सेवक, श्रीजिनेन्द्र भगवान परमात्मा और अपन बाह्यात्मा, श्रीजिनेन्द्र भगवान अनन्त ज्ञानी और अपन अज्ञानी, श्रीजिनेन्द्र भगवान ध्येय और अपन ध्याता, इत्यादि इतना अधिक प्रभेद होनेका क्या कारण है? इसके सम्बन्धमें विचार करने से एवं गुरुगमसे अनुभव करनेसे मालुम होगा कि यह आत्मा अनन्त शक्तिवाला है, पर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अनादि के कर्म-प्रभाव से यह सिंह के तुल्य आत्मा एक बकरी की नांइ दुर्बल बन गया है। श्रीजिनेन्द्र भगवान भी पहिले तो अपनी ही तरह सकर्मज थे, परन्तु उन्होंने अपनी आत्मा के निजरूप को पहिचान कर सिंह की तरह शक्तिका विकाश कर अनादिकाल के लगे हुए कर्मोंको एक क्षण भर में नष्ट कर सम्पूर्ण आत्मस्वरूप को विकशित कर परमात्म-पदको प्राप्त किया है। हम लोग अभी तक आत्माकी शक्ति का विकाश नहीं कर सके हैं, एवं आत्म-शक्तिके विकाश करनेमें जितने प्रयोग परिश्रम की आवश्यकता है, उतना परिश्रम भी नहीं करते हैं। यही कारण है कि हम लोग अभी तक इतने निर्बल हैं। शंका—"जड़रुप कर्मोंने सिंह तुल्य आत्मा के स्वरूप को नष्टप्रायः कर दिया है, तो आत्मा से तो कर्म ही बलवान है, और यदि कर्म ही बलवान है तो बलवान कर्मों को आत्मा की शक्ति कैसे हटा सकती है ?

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

हमें यह बतला दीजिये कि आत्मा और कर्म दोनोंमें बलवान कौन है ?

उत्तर—हे जिज्ञासु बन्धुवर्ग ! आपकी यह तर्क ठीक है क्योंकि जबतक आत्मारूपी सिंह ने अपने पराक्रम को प्रकट नहीं किया है, तब तक कर्मोंका बलवत्तरपन है। श्रीसर्वज्ञ परमात्मा फरमाते हैं कि—"कथ्थ य जीवो बलिओ कथ्थ य कम्माविं हुंति बलियाइं" (किसी समय जीव और किसी समय कर्म बलवान होते हैं) अस्तु आत्मा बलवान होनेसे जरुर कर्मोंका नाश कर देता है। इसीलिये जिनेश्वर भगवान अपनी आत्मशक्तिका विकाश कर कर्मोंका नाश कर देनेसे जिनेश्वर भगवान पूज्य और अपन पूजक, श्रीजिनेश्वर भगवान परमात्मा और अपन बाह्यात्मा इत्यादि अधिक प्रभेद हैं। अस्तु ऐसे जिनेन्द्र भगवान के अवलम्बन से अपन भी किसी न किसी समय आत्मशक्तिका विकाश कर श्रीजिनेन्द्र तुल्य हो सकेंगे। इसी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ही हेतु से श्रीजिनेन्द्र परमात्मा की पूजा भक्ति करना परम योग्य है।

पूजारियोंके कार्यकी तपसील (विवरण)

१ पूजा के कपड़ों बिना अथवा गर्भगृहमें पहिनने योग्य कपड़ों विना, दूसरे कपड़े पहिन कर अथवा कम्बली पहिन कर गर्भगृहमें प्रवेश नहीं करना चाहिये, एवं दूसरा भी कोई इस तरह गर्भगृहमें प्रवेश करता हो तो उसे सभ्यता से समझा देना चाहिये।

२ पूजा वगैरह के कपड़े भगवान की दृष्टि के सन्मुख नहीं बदलने चाहिये, और दूसरा भी कोई बदलता हो तो उसे ऐसा नहीं करनेके लिये सभ्यता से समझा देना चाहिये।

३ पूजाकी केशर अधिक पतली नहीं घिस कर भगवान के अङ्गपर टिके तथा बह न जाय ऐसी गाढ़ी घिसनी चाहिये।

४ प्रक्षालन (पखाल) का दूध हरदम छान कर उपयोग करना चाहिये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

५ गर्भगृह के अन्दर कोई भी काम करना हो वह अष्टपुट मुखकोश बांधकर ही करना चाहिये।

६ प्रथम गर्भगृहके दीवारोंका तथा खिड़कियों वगैरह का कचरा निकाल कर पश्चात रंगमंडपका कचरा निकालना चाहिये। तदनन्तर प्रभुजी को मोरपंखी से प्रमाजन कर सिंहासन का, सिंहासनके चालीका तथा गर्भगृहका समस्त कचरा निकालना चाहिये और जीव रक्षा हो सके ऐसे योग्य स्थानमें उस कचरे को गिराना चाहिये।

७ पूजाके पात्रोंका उपयोग करनेसे पहिले उनको धोकर साफ करना चाहिये एवं धूपदान को भी खंखेर कर पीछे काममें लेना चाहिये।

८ जहांतक हो सके स्नात्र-जल को पव्वासन से नीचे नहीं गिरने देना चाहिये। यदि कदाचित भूलसे गिर भी जाय तो उसे उसी क्षण साफ कर लेना चाहिये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

९ प्रत्येक प्रतिमाजी के किसी भी अङ्गमें जलांश न रह जाय, इस वास्ते अङ्ग लुहण की बत्ती बनाकर उस अङ्गको साफ कर लेना चाहिये।

१० प्रतिमाजी का अङ्गलुहण, केशर, पुष्प, बालकुंची (खसकुंची) बरास, आदि कोई भी पूजा का सामान अपने हाथके सिवाय और किसी भी अङ्ग से स्पर्श नहीं होना चाहिये।

११ प्रतिमाजी की अङ्ग पूजा की कोई भी वस्तु नीचे जहां चलना फिरना, उठना, बैठना, खड़ा होना आदि होता है ऐसी जगह नहीं रखनी चाहिये। पर उनको किसी पट्टे वा बाजोठ पर ऊंचो जगह पर रखना चाहिये।

१२ भगवानके दाहिनी तरफ दीपक एवं बाईं तरफ धूपदान रखना चाहिये।

१३ अपने कपालमें तिलक करके, एवं कदाच पूजा करते समय अपना हाथ शरीरके किसी भी भागसे अथवा वस्त्रसे अड़ गया हो तो फिरसे हाथ धोकर पूजा करनी चाहिये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१४ जलसे हाथ धोकर रुमाल से पोंछना चाहिये, न कि पूजाके वस्त्रोंसे अथवा कम्बलीसे वा दीवार थंभे आदिसे।

१५ स्नात्रजल, अङ्गलुहण व हाथ धोया हुआ जल, छत अथवा खालमें नहीं गिराकर किसी पात्रमें डालकर योग्य स्थानमें गिराना चाहिये।

१६ अङ्गीमें कटोरियां (कचोलियां) प्रतिमा जी के चिपकाते समय कटोरियोंके पहिले की लगी हुई केशर को साफ कर पश्चात चिपकानी चाहिये।

१७ मन्दिरजीमें गृहकम का बातें अथवा किसी भी तरह की फजूल बातें और क्लेश उत्पन्न करनेवाली निन्दा इत्यादि विकथा नहीं करनी चाहिये तथा अविनय हो इस तरह का कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये।

१८ बालकुंचियोंमें (खसकुंचियोंमें) जलांश रह जानेसे जीवोत्पत्तिकी सम्भावना है, इसलिये

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उनको साफ करके अर्थात जल झटका करके रखनी चाहिये ताकि वे सूख जाय।

"कचरा इत्यादि साधारण कार्य करनेवालोंके कार्य का विवरण"

१ देहरासर खुलने से लगाकर देहारासर मङ्गलिक होवे तबतक हर समय उपस्थित रहना चाहिये एवं इसमें किसी भी तरह की लापरवाही नहीं करनी चाहिये।

२ प्रातःकाल आते ही जल रखनेकी जगह केशर घिसने की जगह तथा मन्दिरजीके (देहरासरके) रङ्गमण्डप की जगह का कचरा साफ करना चाहिये तथा पक्षी वगैरह की विष्ठा पड़ी हो तो उसे भी साफ करनी चाहिये। (जहांतक हो सके कचरा ऊनके दण्डासनसे अथवा कोमल मोरपंखीके दण्डासन से वा दक्षिण के कोमल घास की पूंजणी से वा शठा की पूंजणीसे साफ करनी चाहिये)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

३ कचरा साफ कर लेनेके पश्चात कूंडियां जल रखनेकी हांड़ियाँ कलश, रकेबी, बाटकी, आदि पूजाके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंको पोंछकर, साफ कर धो लेना चाहिये और उन्हें योग्य स्थानमें रख देना चाहिये।

४ एकत्रित किया हुआ कचरा ज्यों त्यों नहीं फेंक कर किसी योग्य स्थानमें जहां जीव रक्षा हो सके ऐसी जगह गिराना चाहिये।

५ इसके बाद दीपक, लालटेन, धूपदान, दीये आदिमें से वासी दीपक, घी, बत्ती, राख आदि निकाल कर इनको साफ करना चाहिये। जो वस्तुयें जलसे नहीं मांजी जा सकतो उन्हें कपड़ेसे पोंछकर साफ करना चाहिये और देहरासर मङ्गलिक करते समय भी इन वस्तुओं को साफ कर रखना चाहिये।

६ इसके बाद गर्भगृहके आगे रहा हुआ धूपदान एवं रङ्गमण्डपमें रहे हुए पट्टे वगैरह किसीके पैरोंमें न आवे ऐसी योग्य जगह रख देना चाहिये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

७ इसके पश्चात हरेक मुख्य गर्भगृहके बाहर नजदीक हो जहां सब को दृष्टि पड़ सके, ऐसो जगह किसी लालटेन अथवा ढक्कनवाले दीपकमें दीवीके उपर दीपक करना चाहिये। और उस दीपकके बगल ही में अगरबत्ती किसी पात्रमें एवं घृत भी किसी पात्रमें रखना चाहिये (घृत के पात्र को ढांकने का हरदम खयाल रखना चाहिये) कि जिससे विना स्नान किये हुए को भी धूप दीप करने का एवं घृत डालने का सुभीता रहे।

८ हरेक मुख्य गर्भगृहके आगे मन्दिरजी खुलनेसे मंगलिक तक दीपक जलता रहे एवं उपर नीचेके गर्भगृहोंमें जबतक पूजारी पूजा धूपादि करे तब तक दीपक जलता रहे इतनाही दीपकमें घृत डालना चाहिये, अधिक नहीं डालना चाहिये, आवश्यकता हो तो बीच २ डाल देना चाहिये, क्योंकि ऐसा होनेसे घृत का दुरुपयोग नहीं होता। आवश्यकतासे अधिक दीपक नहीं करना चाहिये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

९ केशर घिसने वगैरह की जगह पर जल, केशर घी अगरबत्ती, दियासलाई रूई आदि वस्तुओंको अपनी जगहपर हर समय खयाल करके पहिले ही से रख देना चाहिये, क्योंकि इनमेंसे कोई वस्तु किसी समय हाजिर न हो तो कितने ही भाई इनके विना ही आलस्य और जल्दीमें काम चला लेते हैं, किन्तु ऐसा करना उचित नहीं। इन वस्तुओंके पात्रोंको भी अच्छी तरहसे ढक देना चाहिये ताकि जीव जन्तु एवं कचरा इनमें पड़े नहीं।

१० विना स्नान किये गर्भगृहमें कदापि प्रवेश नहीं करना चाहिये, यदि किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो पूजारी अथवा पूजा करने वाले श्रावक से मंगा लेना चाहिये।

११ अङ्गलुहणोंको एवं पाटलुहणों को सर्व गर्भगृहोंमें पूजा हो जानेके पश्चात् ऐसे स्थानमें रखना चाहिये जहां सूखनेके बाद नरम रहें एवं किसी वस्तुसे अड़े नहीं। और इनको

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

धोनेके बाद या पहिले कभी भी नीचे जमीन पर नहीं रखना चाहिये, पर किसी उंचे स्थानमें अथवा पात्रमें रखना चाहिये एवं अपने शरीर अथवा कपड़ेसे नहीं अड़ने देना चाहिये। इन को धोया हुआ जल किसी खाल वा दीवारमें नहीं गिराकर मन्दिरजी के बाहर जल्दी सूख जाय ऐसी निर्जीव भूमि में छूटा छूटा गिराना चाहिये।

१२ स्नात्रजलमें से बरग, पुष्प, चावलादि जो वस्तु निकाली जा सकती है उनको निकाल कर एवं एक अङ्गलुहण से स्नात्र जल को छान कर बादमें किसी योग्य स्थानमें छूटा छूटा गिराना चाहिए, जिससे अन्दर त्रस जीवोंकी एवं वनस्पतिकी उत्पत्ति नहीं होने पावे, क्योंकि उस जलको इकट्ठा कर रोज २ एकही जगह गिरानेसे वहां उस स्थान पर जीवोत्पत्ति एवं वनस्पति पैदा हो जाती है। यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि जिस जगह स्नात्रजल गिराया

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जाता है वहां गमनागमन तो नहीं है, अर्थात स्नात्रजल किसी के पैरोंके नीचे नहीं आना चाहिए।

१३ जहां जहां अधिक गर्भगृह होते हैं वहां सारे ही गर्भगृहोंके जलको एकत्रित कर गिराया जाता है, पर इसके बीचमें मक्खी आदि जन्तु उस जल में पड़कर नष्ट हो जाते हैं, इसलिए ज्योंही जिस गर्भगृह में पूजा हुई त्योंही उस स्नात्रजल को योग्य स्थानमें गिरा देना चाहिए, और यदि सारे ही गर्भगृहोंके जलको इकट्ठा करके एक साथ ही गिराना हो तो स्नात्रजल को किसी आवरण (ढक्कन) वाले पात्रमें रखना चाहिए और पहिले के स्नात्रजल को ढकना कभी नहीं भूलना चाहिए। कार्यकर्त्ताओंको उचित है कि वे ऐसे ढक्कनवाले पात्र अवश्य रखें।

१४ चूहा, गिलहरी, मक्खी, कबूतर आदि कोई भी जन्तु वा इनका कलेवर अथवा इनकी हड्डी वगैरह मन्दिरजीमें कहीं भी हो तो उठाकर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

मन्दिरजी के बाहर किसी दूर जगह अकूड़ो आदि स्थानमें गिरा देना चाहिये। वहां से आकर फिर से स्नान करनी चाहिये।

१५ देहरासर मंगलिक होते समय घर जानेके वक्त निम्नलिखित बातोंपर ध्यान देना चाहिये।

(क) दूसरीवार कचरा निकालते समय खिड़कियाँ, दीवार, जालियों आदिमें जो जाले वगैरह रह जाते हैं उन सबको दूर करना चाहिये और फिर बादमें कचरा निकालना चाहिये। कचरेमें जो बादाम, सुपारी, चावल आदि हों उनको कोई जीवजन्तु न लगे ऐसे योग्य स्थान में रख देना चाहिये एवं रङ्गमण्डप में पड़े हुए धूपदान, पट्टे आदि को किसी के पैरोंमें नहीं पड़े एवं जहां टूटे फूटे नहीं ऐसे स्थानमें रख देना चाहिये।

(ख) उपर लिखे अनुसार खिड़कियों, जालियों आदिको हर रोज साफ करना चाहिए

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

और यदि ऐसा न बन पावे तो हरदम काममें आनेवाली जगहोंका तो कचरा रोज निकाल ही देना चाहिये और दूसरी २ जगहों को अठवाड़िये तो अवश्य ही साफ करना चाहिए और गर्भगृहके आगे कोई उतरे हुए फूल पड़े हो उनको उठा लेना चाहिए।

(ग) बादाम मिश्री आदि चीजोंपर कीड़ो आदि जन्तु नहीं चढ़ इसलिए उनको किसी ढक्कनवाले डब्बे वा लकड़ी की पेटीमें रखना चाहिए। कार्यवाहकोंको उचित है कि वे पहिले ही से ऐसा प्रबन्ध कर रखें।

(घ) पूजा की बची हुई केशर तथा जल बासा नहीं रखना चाहिए इसलिए इनको हर रोज निकाल देना चाहिए।

(ङ) लालटेन, दीपक आरती मंगलदीप, ढक्कन, रकेबी, बाटको और खाली पात्रोंको हर रोज मांजकर योग्य स्थानमें रखनेका विशेष खयाल रखना चाहिये।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१६ किसी समय यदि वर्षा का जल मन्दिर जीके किसी भागमें रहा हो तो दूसरे दिन प्रातः काल ही उस जलको लेकर बाहर वर्षा ही के जलमें गिराकर मिला देना चाहिए।

१७ किसी दर्शन करनेवाले अथवा पूजा करनेवाले श्रावक अथवा पूजारी की तरफ से बताये हुए किसी भी काम को अपने हाथके कार्य को पूरा करके अथवा अपने हाथ का कार्य बीचमें छोड़ दिया जाय तो कोई बिगाड़ नहीं होगा ऐसी हालत में अथवा अपने हाथके कार्य का दूसरा कोई उचित प्रबन्ध करके, बादमें उनसे बताये गये कार्य को कर देना चाहिये। हाथके कार्य को बिगड़ता हुआ कभी नहीं छोड़ना चाहिए, और साथ ही बताये गये कार्य के प्रति लापरवाही भी नहीं करनी चाहिए। बताया गया कार्य यदि जल्दी का हो तो चालू कार्य नहीं बिगड़े ऐसी हालत में छोड़कर कर देना चाहिए।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

१८ केशर घिसने की जगह हाथ धोने आदि का जल इकट्ठा हो जाता है, और ऐसी हालतमें जल अधिक समय वहीं पड़ा रहनेसे मक्खी आदि जन्तु उसमें पड़कर मर जाते हैं। इसलिये उस जल को तुरन्त ही बाहर किसी योग्य स्थानमें गिराने का हरदम उपयोग रखना चाहिये।

१९ कोई स्त्री यदि मन्दिर जीमें ऋतुधर्मको प्राप्त हो गई हो, एवं किसी बालक ने टट्टी वा पिसाब कर दिया हो तो शीघ्र ही उस स्थानको प्रथम जलसे साफकर पश्चात् दूधसे धो डालना चाहिये (इसका खर्च आशातना करनेवालेको देना चाहिये, यदि वह नहीं दे तो अन्तमें मन्दिरजी के खर्च से ही आशातनाको तो दूर करवानी ही चाहिये) एवं स्वच्छ हो जानेके पश्चात् दसांग वगैरह धूप कर देना चाहिये।

॥ समाप्त ॥

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम प्रभु।
मंगलं स्थूलिभद्राद्या, जैन धर्मोस्तु मंगलम्॥

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

शीघ्रता कीजिये ! नहीं तो पछताना पड़ेगा !!

श्रीअभय जैन ग्रन्थमालाकी प्रकाशित पुस्तकें

अवश्य खरीदिये !

उक्त ग्रन्थमाला श्रीमान् शंकरदानजी नाहटा के पुत्ररत्न स्व० अभयराजजी नाहटा के स्मर्णार्थ वि० सं० १९८२ में स्थापित की गई थी। बाबू अभयराजजी बहुत ही उच्च विचारवाले एवं सुधार-प्रिय थे। आपके हृदयमें समाज सुधार एवं शिक्षा-प्रचार की भावनाऐं कूट २ कर भरी हुई थीं ; हर घड़ी आप इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे कि इस ओसवाल जाति की डूबती हुई नौकाका किस प्रकार उद्धार हो। आपकी भावनाऐं खिल ही नहीं पाई थीं; कि उसके पहले ही दुर्दैव-वश कराल-काल ने उन्हें अपना ग्रास बना लिया। बस, आपकी प्रबल भावनाओंको चिर स्मर्ण रखनेके लिये ही इस माला की स्थापना हुई, और थोड़े ही कालमें इस मालाके बहुत ही उपयोगी निम्नलिखित छः पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं। आशा है, प्रत्येक महाशय इससे लाभ उठावेंगे।

(१) अभयरत्नसार।

पुस्तक क्या थी, वास्तविक में रत्न ही ; इस पुस्तकमें खरतर गच्छीय पंचप्रतिक्रमण, साधु प्रतिक्रमण सूत्र, पक्खी सूत्र के साथ

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ही साथ बहुत से मनोहर स्तवन, सझाय, रास, स्तोत्र और तप-विधियें आदि का बहुत ही अच्छा संग्रह एवं अन्तमें हिन्दी भाषामें "भक्ष्या-भक्ष्य विचार" नामक लेख है। विशेष क्या कहा जाय इसकी प्रशंसा के लिये इतना ही लिखना पर्याप्त होगा, कि लोगोंने इतना अपनाया कि अब स्टाकमें पुस्तकें नहीं रही। पृष्ठ संख्या ८०० सजिल्द मूल्य ॥।)

(२) पूजा संग्रह।

पुस्तक का नाम ही इसकी उपयोगिता प्रकाशन के लिये काफी होगा। इसमें भिन्न २ महान् कविओं की रचित १७ पूजाओं के साथ समयसुन्दरजी महाराज की अप्रकाशित चौवीसी तथा भाव-पूर्ण स्तवन भी दे दिये गये हैं, पृष्ठ ४६४ होने पर भी सजिल्द का मूल्य रु० १) मात्र। पुस्तक अवश्य आदरणीय है, बिकने पर 'अभयरत्नसार" की तरह इसके लिये भी हाथ मलते रहना पड़ेगा।

(३) सतीमृगावती।

(ले० भंवरलाल नाहटा)

कौशाम्बी अधिपति राजा शतानीक की महिषी सती मृगावती का जीवन-चरित्र है। पुस्तक बड़ी ही रोचक एवं सतीत्व रससे सनी हुई है इसे पढ़कर आप अपने हृदय में महान् शान्ति मिली हुई पावेंगे, आपके हृदय पर सतीत्व एवं सहनशीलता की गहरी छाप पड़ी हुई देखेंगे। इतना होते हुए भी भाषा अति सरल है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रियोंके लिये तो मानो यह उनका सौभाग्य ही है, हरघड़ी प्रत्येक स्त्री को पासमें रखनी चाहिये। मूल्य ≠) मात्र।

(४) विधवा-कर्त्तव्य।

(ले० अगरचन्द नाहटा)

ताड़ पत्र पर लिखित प्राचीन "विधवा कुलक" नामक प्राकृत कुलक का मूलसह विस्तृत विवेचनात्मक भाषानुवाद है। अन्तमें विधवाकर्त्तव्य नामक स्वतंत्र लेख में विधवा स्त्रियों के प्रायः सभी कर्त्तव्यों पर काफी प्रकाश डाला गया है। सच लिखा जाय तो विधवा स्त्रियोंके जीवन को सार्थक बनाने के लिये यह अमूल्य ही है। पृ० सं० ७२ मूल्य ≠) मात्र।

(५) स्नात्र-पूजादि संग्रह।

इसमें स्नात्र पूजा, अष्ट प्रकारी पूजा, दशत्रिक स्तवन आदिका अच्छा संग्रह है। दो पैसे की टिकट भेजनेपर मुफ्त भेजी जाती है।

(६) जिनराज भक्ति आदर्श।

प्रस्तुत पुस्तक पाठकों के हाथमें ही है। "हाथ कंकण को आरसी क्या" कहावत के अनुसार लिखने की आवश्यकता नहीं। दो आने की टिकट भेजने पर पुस्तक भेट की जायगी।

अब इस ग्रन्थमाला द्वारा ऐतिहासिक और तत्वज्ञानके सुन्दर २ ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित होनेवाले हैं। साहित्य प्रेमी पाठकों को

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तो प्रथम ही से ग्राहक बन जाना चाहिये नहीं तो सम्भव है, कि फिर हाथ न आने पर पछताना पड़े।

शीघ्र छपनेवाले ग्रन्थ।

(१) श्रीजिनचन्द्र सूरि (अकबर प्रतिबोधक) का जीवन-चरित्र। (२) सम्यक्त्व-स्वरूप (३) कविवर समयसुन्दर (४) मस्तयोगी ज्ञानसारजी (५) कविवर धर्मवर्द्धनजी इत्यादि।

नोट—ज्ञात रहे कि उपरोक्त सभी जीवनियां ऐतिहासिक खोज शोध के साथ लिखी जायगी।

मिलने के पते :—

श्रीअभय जैन ग्रन्थमाला।
ठि० दानमल शंकरदान नाहटा,
नाहटों की गुवाड़ (बीकानेर)

शंकरदान शुभैराज नाहटा,
५।६, अरमेनियन ष्ट्रीट,
कलकत्ता।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इस पुस्तक के मिलने का पता :—

श्रीकुशलचन्द्रजी गणि जैन पुस्तकालय,

नया उपासरा

रामपुरियों का चौक, बीकानेर ।

(BIKANER)

लक्ष्मीविलास प्रेस, ३, वेहरापट्टी, कलकत्ता से मुद्रित ।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org